त-प्रचार-पुस्तकमाला सं० २२

सरल-

संस्कृत-पद्य-संग्रहः

कृत के विभिन्न ग्रन्थों से कुछ ऐसे सरल, शिक्षाप्रद एवं मनोरञ्जक पद्यों का संकलन जिसके अध्ययन से संस्कृत सीखने के इच्छुक व्यक्ति संस्कृत सीखने में सहायता प्राप्त करने के साथ ही संस्कृत-साहित्य का रसास्वादन भी कर सकते हैं

प्रथम भाग।

सम्पादक—
श्री वासुदेव द्विवेदी, वेदशास्त्री, साहित्याचार्य
(सम्पादक-संस्कृत प्रचार-पुस्तकमाला)

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
टेढीनीम, काशी।

आवृत्ति १००० [मूल्य एक रुपया



मुद्रक
विश्वनाथ भार्गव
मनोहर प्रेस, जतनबर, बनारस ।



कृतज्ञता प्रकाश

इस पुस्तक के प्रकाशन में नैनीजोर, जिला आरा के निवासी तथा वर्तमान में वसतपुर थाना, जिला सारन के प्रधान, भूमिहारकुलभूषण—

श्रीयुत इन्द्रासन पांडे, बी० ए० महोदय

ने

३७५) सहायता प्रदान की है। आप प्रधानतया अंग्रेजी शिक्षित होने तथा पुलिस-विभाग जैसी साहित्य और संस्कृति की चर्चा से दूर रहने वाली संस्था में काम करने पर भी संस्कृत-प्रचार के प्रबल पक्षपाती, संस्कृत-साहित्य के महान् अनुरागी और अध्येता तथा भारतीय संस्कृति के विचार एवं व्यवहार उभयथा विशेष समर्थक तथा उपासक व्यक्ति हैं। संस्कृत-प्रचार की सर्वत्र चर्चा, संस्कृत-साहित्य का यथासम्भव अनुशीलन तथा संस्कृत के विद्वानों से अनुराग एवं उनकी यथाशक्ति सेवा यह आपके जीवन के मुख्य कर्तव्य हैं। आपने अपने निजी अध्ययन के लिये वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, योगवाशिष्ठ, दर्शन, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, काव्य, व्याकरण आदि एवं अन्य अनेक संस्कृत-साहित्य के विशिष्ट ग्रन्थों का एक सुन्दर संग्रह कर रखा है और सर्वदा नूतन प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के भी संग्रह के लिये सचेष्ट रहते हैं। आपकी भ्रातृवधू साहित्याचार्या हैं। आपके अत्यन्त नन्हे बालक श्री इन्द्रजित् को अपनी तुतली बोली में ही न जाने संस्कृत के कितने ही सुन्दर-सुन्दर श्लोक शुद्ध-शुद्ध एवं स्वर के साथ कण्ठस्थ हैं। गम्यताम्, आगम्यताम्, दीयताम्, गृह्यताम् आदि व्यावहारिक पद आपके बालक-भृत्य टेंगरी को भी याद रहते हैं। और आपके इस दैनिक संस्कृत की चर्चा से आपके सुजन सईस श्री खैरत मियाँ भी संस्कृत और संस्कृतज्ञों के प्रेमी हो गये हैं। यह सब आपके संस्कृतानुराग के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

इसके अतिरिक्त आपकी दो और विशेषतायें हैं। पहली यह कि संस्कृत-साहित्य की शिक्षाओं के अनुसार आप किसी व्यक्ति के लिये केवल संस्कृत का

विद्वान् होना ही पर्याप्त नहीं समझते प्रत्युत इसके साथ ही उसका सदाचारी हो उससे भी अधिक आवश्यक समझते हैं। इसीलिये आप बिलकुल सदाचार संयमपूर्ण तथा अत्यन्त साधारण एवं आडम्बरविहीन सादा जीवन व्यतीत क हैं। काट-छाँट के साथ क्षौर न बनवाकर हमेशा मुण्डित शिर रहना, सफे. लंगोटा, सफेद लुङ्गी (नीली कदापि नहीं), सफेद लम्बा कुर्ता तथा बिना काट छाँट की मूछें आपके सादगी के प्रमाण हैं। बीड़ी, सिगरेट एवं मांस अथ मदिरा के तो गन्ध तक का आप अपने हाते में प्रवेश नहीं होने देते। दूस विशेषता यह है कि संस्कृतज्ञ एवं सदाचारी होने के अतिरिक्त स्वस्थ बलवान् होना भी आप सबके लिये आवश्यक समझते हैं। आपने अपने जीव का आदर्श "ज्ञानं बलं सदा ध्येयम्" रखा है। तदनुसार आप न केवल विद्वा एवं सदाचारी ही व्यक्ति हैं प्रत्युत इसके साथ ही एक बलिष्ठ एवं विशालक पहलवान भी हैं। मुझे अत्यन्त खेद है कि मैं आपके उपर्युक्त अनन्य साधार एवं एकत्र दुर्लभ गुणों के साथ आपके दर्शनीय स्वरूप को पाठकों के सम्मु उपस्थित न कर सका। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण आप एक सर्वाङ्गपूर्ण आदर्श भारतीय आर्य पुरुष हैं और भारतमाता के वरपुत्र हैं।

आपने अपने इस स्वाभाविक संस्कृतानुराग तथा उसके प्रचार की उत्कट इच्छा के कारण कार्यालय को इससे पहले भी ४००) की सहायता प्रदान की है। यह उसकी द्वितीय आवृत्ति है और आगे भी यह क्रम अवरुद्ध नहीं होगा ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। आपके इस संस्कृत के प्रति महान् हार्दिक स्नेह और सक्रिय सहायता के लिये आपको जितना धन्यवाद दिया जाय, जितना अभिनन्दन किया जाय और आपके प्रति जितनी कृतज्ञता प्रदर्शित की जाय वह अत्यन्त स्वल्प है और एक प्रकार से विडम्बना है। बस, आप सर्वदा स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु हों और जहाँ रहें वहाँ संस्कृत और भारतीय संस्कृति की विमल ज्योति से सबको आलोकित करते रहें यही एकमात्र भगवान् विश्वनाथ के चरणों में निवेदन है।

गुणक्रीत—
सम्पादक

आवश्यक निवेदन

इस संकलन की आवश्यकता

संस्कृत भाषा से परिचित प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभव होगा कि संस्कृत के अधिकांश गद्य एवं पद्य सन्धि-समास की बहुलता के कारण अन्य भाषाओं की अपेक्षा बाँचने तथा समझने में भी कुछ अधिक कठिन एवं दुर्बोध हुआ करते हैं। इस समय भी संस्कृत के जो विद्वान् संस्कृत में कुछ पद्य अथवा गद्य लिखते हैं वे उसे प्राचीन रचनाओं की ही भाँति सन्धि-समास की बहुलता से गम्भीर बनाने में ही अपना तथा संस्कृत का गौरव मानते हैं। यह मनोवृत्ति केवल विशुद्ध संस्कृत पण्डितों की ही हो सो बात नहीं है प्रत्युत आजकल के प्रगतिशील विचार के अंग्रेजीविद् संस्कृत विद्वानों की भी है।

यद्यपि यह सन्धि-समास की बहुलता संस्कृत भाषा की एक अपनी निजी विशेषता है और इसके कारण संस्कृत की रचना में जो ओज और प्रौढ़ि दृष्टिगोचर होती है वह अन्य भाषाओं के लिए दुर्लभ है पर जहाँ संस्कृत भाषा के लिये यह एक विशेष गुण है वहाँ संस्कृत सीखने के मार्ग में एक बहुत बड़ी भयंकर बाधा भी है। क्योंकि जब कभी संस्कृत के किसी प्रारम्भिक विद्यार्थी के समक्ष कोई ऐसा गद्य या पद्य आ जाता है जिसमें अनेक सन्धियुक्त एवं समस्त पद रहते हैं तो स्वभावतः उसे उस गद्य-पद्य को पढ़ने में कठिनता प्रतीत होती है और यदि संस्कृत पढ़ना अनिवार्य नहीं रहता है तो वह उसके पढ़ने से विरत भी हो जाता है।

संस्कृत की रचनाओं में सन्धि-समास की जटिलता से रहित, सरल, सुवाच्य एवं सुबोध गद्य-पद्यों का अभाव हो ऐसी बात नहीं है। रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराण, उपपुराण, नीतिशास्त्र, सुभाषित तथा कथा-ग्रन्थों में अधिकांश गद्य-पद्य ऐसे ही मिलते हैं जो बहुत सरल, सुवाच्य एवं सुबोध होते हैं। परन्तु ऐसे गद्य-पद्यों का कोई संकलन न होने से संस्कृत सीखने के इच्छुक व्यक्तियों

को उनके अध्ययन से वञ्चित रहना पड़ता है और उपर्युक्त कठिनाई का सामना करने के लिये विवश होना पड़ता है।

संस्कृत के प्रारम्भिक शिक्षार्थियों की इस कठिनता को दूर कर संस्कृत सीखने का मार्ग प्रशस्त करने के लिये संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से संस्कृत के सरलतम गद्य-पद्यों का संग्रह प्रकाशित करने की आवश्यकता हमें बहुत दिनों से प्रतीत हो रही थी। इसकी यत्र-तत्र चर्चा करने पर अनेक संस्कृत सीखने के इच्छुक व्यक्तियों ने इसके शीघ्र प्रकाशन के लिये बार-बार अनुरोध भी किया। तदनुसार आज यह सरल-संस्कृत-पद्य-संग्रह तथा इसी प्रकार की एक और पुस्तक "सरल-संस्कृत-गद्य-संग्रह" यह दो पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं।

अन्तरङ्ग परिचय

इस पुस्तक में सब मिलाकर २६३ श्लोक संकलित हैं। जिन ग्रन्थों से श्लोक लिये गये हैं उनके नाम तथा यथासम्भव अध्याय एवं श्लोकसंख्या आदि को श्लोकों के नीचे दे दिया गया है। जैसा कि ऊपर लिखा गया है इस पुस्तक में ऐसे ही श्लोक संकलित हैं जो सन्धि एवं समास की जटिलता से प्रायः रहित हैं। २६३ श्लोकों में ६६ श्लोक ऐसे हैं जिनमें एक भी सन्धि नहीं है। ६१ श्लोक ऐसे हैं जिनमें केवल एक एक ही सन्धि है। बाकी श्लोकों में दो-दो तीन-तीन सन्धियाँ भी हैं पर वे भी बहुत साधारण हैं। जिस श्लोक में जो संधियुक्त पद है उसका पदच्छेद टिप्पणी में कर दिया गया है। समासयुक्त पद तो बहुत ही अल्प हैं और जो हैं भी वे इतने साधारण हैं कि उनके समझने में पाठकों को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। पर श्लोकों की सरलता के साथ उनकी उपयोगिता पर भी ध्यान दिया गया है। प्रायः ऐसे ही श्लोक संकलित किये गये हैं जो जीवन के लिये अत्यन्त उच्च शिक्षाप्रद, विविध ज्ञानवर्धक तथा सुभाषित के रूप में विभिन्न अवसरों पर कहने तथा उल्लेख करने योग्य हैं। विद्यार्थी सरलता से इन श्लोकों को कण्ठस्थ कर अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता के काम में भी ला सकते हैं।

विशेषता और लाभ

इस पुस्तक की सरल होने के अतिरिक्त, दो और प्रमुख विशेषतायें हैं। एक

तो यह कि प्रत्येक पद्य का भावार्थ न दे कर उसके अन्वय के अनुसार शब्दों को रखकर उनके अलग-अलग अर्थ दिये गये हैं जिससे शिक्षार्थियों को प्रत्येक पद का व्याकरणानुसार अर्थ मालूम हो सके। दूसरी विशेषता यह है कि पद्यों का वर्गीकरण विषयों के अनुसार न कर व्याकरण के अनुसार किया गया है। अर्थात् जिन पद्यों में सुबन्त पद अधिक हैं वे सुबन्त प्रकरण में, जिनमें क्रियापद अधिक हैं वे तिङन्त प्रकरण में, जिनमें कृदन्त पद अधिक हैं वे कृदन्त प्रकरण में, जिनमें विशेष्य-विशेषण पद अधिक हैं वे विशेष्य-विशेषण प्रकरण में, जिनमें कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के अधिक उदाहरण हैं वे वाच्य प्रकरण में तथा जिनमें सर्वनाम पद अधिक हैं वे सर्वनाम प्रकरण में रखे गये हैं। इस प्रकार के प्रकरण-विभाग से शिक्षार्थियों को यह बहुत बड़ा लाभ होगा कि वे एक प्रकार के पदों को एक ही स्थान पर अधिक संख्या में देख सकेंगे और उनका अर्थ समझने तथा उस प्रकार की संस्कृत स्वयं बना लेने में वे बहुत शीघ्र निपुणता प्राप्त कर लेंगे। जिन पदों को वे रटकर नहीं कण्ठस्थ रख सकते उन्हें एक जगह श्लोक में प्रयुक्त पाकर मनोरञ्जन के साथ ही उन्हें कण्ठस्थ एवं हृदयंगम कर सकते हैं।

पढ़ने की विधि

१—इस पुस्तक के पढ़ने के पहले शिक्षार्थियों को कार्यालय द्वारा प्रकाशित सुगम-शब्द-रूपावलि तथा सुगम-धातु-रूपावलि द्वारा कुछ विशेष आवश्यक शब्दों एवं धातुओं के रूपों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। इसके साथ ही यदि वे कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'बाल संस्कृतम्' तथा 'बाल कवितावलि' इन दो पुस्तकों को भी २-४ बार बाँच लें तो वे और भी अधिक योग्यता प्राप्त कर सकेंगे। उपर्युक्त पुस्तकें बिना विशेष परिश्रम के मनोरञ्जन के साथ संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये प्रकाशित की गई हैं।

२—दूसरी विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस पुस्तक के किसी प्रकरण के किसी पद्य को पढ़ते समय उसके प्रत्येक पद का पूरा-पूरा व्याकरणानुसार परिचय प्राप्त करके ही दूसरे पद्य को पढ़ना चाहिए। यदि सुबन्त पद है तो उसके मूल शब्द, लिङ्ग, कारक, विभक्ति एवं वचन आदि का; यदि क्रियापद है तो

उसके मूल धातु, गण, काल, लकार, पुरुष, वचन एवं कर्तृवाच्य तथा भाववाच्य आदि का ; यदि कृदन्त पद है तो उसके धातु, प्रत्यय एवं प्रत्ययार्थ का ; यदि विशेषण पद है तो उसके लिङ्ग, कारक एवं वचन के विशेष्य के अनुसार होने का ; यदि कर्मवाच्य का वाक्य है तो उसका कर्मवाच्य एवं कर्तृवाच्य दोनों के अनुसार अर्थ करने का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना संस्कृत का समुचित ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिये नितान्त आवश्यक है। किसी भी पद्य का एक भी ऐसा पद नहीं छूटना चाहिये जिसका ठीक-ठीक पद-परिचय विद्यार्थी को न मालूम हो। इस पुस्तक में पदों का विशेष परिचय नहीं दिया गया है अतः विद्यार्थियों को जहाँ सन्देह हो वहाँ किसी संस्कृत के विद्वान् से पूछ कर सन्देह की निवृत्ति कर लेनी चाहिये।

३—यदि सम्भव हो तो इसके समस्त पद्यों को कण्ठस्थ कर लेना चाहिये। जिस व्यक्ति को इतने श्लोक कण्ठस्थ हो जायँगे उसे सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त एवं अव्यय पदों का इतना पर्याप्त ज्ञान हो जायगा कि वह संस्कृत में बोलने तथा लिखने का काम अच्छी तरह चला सकेगा। इसके साथ ही यदि वह दूसरी पुस्तक "सरल-संस्कृत-गद्य-संग्रह" को भी पढ़ जाय तब तो कोई कमी ही नहीं रह जायगी।

४—श्लोकों में जितने सुबन्त, तिङन्त या कृदन्त पद विशेष अपरिचित तथा क्लिष्ट हों उन्हें अर्थ के साथ कहीं लिख लेना चाहिये और उनका अभ्यास कर लेना चाहिये।

५—इस पुस्तक में संकलित सभी श्लोकों के पदों तथा भावों को अपनी प्रतिदिन की बोलचाल की संस्कृत में प्रयुक्त करना चाहिये और लेख आदि में भी उनका उपयोग करना चाहिये। किसी भी श्लोक के भाव को अपनी संस्कृत में भी व्यक्त करने का अभ्यास करना चाहिए।

६—किस धातु में कौन उपसर्ग लगा है तथा उसके लगने से धातु के अर्थ में क्या परिवर्तन हुआ है इस पर भी ध्यान रखना चाहिए।

७—किस श्लोक का क्या छन्द है तथा उसे किस प्रकार पढ़ना चाहिए

इसका भी परिज्ञान रखना चाहिए तथा किसी भी श्लोक को खूब सुन्दर लय तथा आकर्षक ढंग से पढ़ने का अभ्यास करना चाहिये।

पुस्तक के किसी भी श्लोक को पढ़ते समय उपर्युक्त बातों पर पूर्ण ध्यान देना नितान्त आवश्यक है।

पुस्तक की कुछ त्रुटियाँ

कतिपय अनिवार्य कारणों से पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं। श्लोकों के प्रत्येक पद का अलग अलग अर्थ देने मे उस पूरे श्लोक के हिन्दी-अर्थ की सुन्दरता कहीं-कहीं नष्ट हो गई है तथा पाठकों को पूरा श्लोकार्थ समझने में कुछ विलम्ब भी लग सकता है। यह त्रुटि शब्दार्थ के नीचे भावार्थ देकर दूर की जा सकती थी। इसी प्रकार श्लोकों में जो कहीं-कहीं विशेष अप्रसिद्ध शब्द एवं धातु आ गये हैं उनका विशेष पदपरिचय टिप्पणी में देकर पाठकों का अधिक हित किया जा सकता था, पर पृष्ठसंख्या के बढ़ जाने के भय से ऐसा नहीं किया जा सका। संयोगवश संग्रह-पुस्तिका पास में न रहने के कारण कितने ही श्लोकों के मूल ग्रन्थों के नाम तथा कुछ श्लोकों के मूल ग्रन्थों का नाम देने पर भी उनके अध्याय तथा श्लोकसंख्या आदि के छूट जाने की भी त्रुटि रह गई है। अनेक स्थलों पर प्रूफ-संशोधन सम्बन्धी त्रुटियों का रह जाना भी संभव है। इसके अतिरिक्त और भी शताधिक सुन्दर एवं सरल श्लोकों को हम पृष्ठसंख्या के बढ़ने के भय से ही नहीं प्रकाशित कर सके हैं। इस प्रकार पुस्तक में अनेक अवाञ्छनीय त्रुटियाँ रह गई हैं—और जिस आकार एवं रूप में हम पुस्तक प्रकाशित करना चाहते थे वैसा नहीं किया जा सका है। फिर भी यथासंभव जैसा भी प्रकाशन हुआ है उससे संस्कृत सीखने में तो सहायता प्राप्त होगी ही जो इस प्रकाशन का मुख्य लक्ष्य है। आशा है द्वितीय आवृत्ति में उपर्युक्त त्रुटियाँ भी दूर की जा सकेंगी।

पाठकों से विनीत अभ्यर्थना

अन्त में संस्कृतानुरागी तथा संस्कृत सीखने के इच्छुक प्रत्येक पाठक से हमारी विनीत प्रार्थना है कि यदि वे इस पुस्तक को संस्कृत सीखने में सहायक और उपयोगी समझें तो कृपाकर अपने सुहृद्वर्ग, प्रतिवेशी शिक्षित सज्जनों तथा

समीपवर्ती विद्यालयों में भी इसका परिचय देने तथा ऊपर लिखित पढ़ने की विधि के साथ इसके पढ़ने-पढ़ाने की ओर सबका ध्यान आकृष्ट करने का कष्ट स्वीकार करेंगे। यदि कुछ सहृदय पाठकों ने इस पुस्तक के प्रचार में सहयोग देकर संस्कृत की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने तथा सबको सरलता से संस्कृत-शिक्षित बनाने के हमारे प्रयत्न में सहयोग दिया तो मैं उनका बहुत ही आभारी रहूँगा।

आशा है, सहृदय संस्कृतप्रेमी पाठकगण इस काम में मुझे अकेला और असहाय जानकर हमारी अवश्य सहायता करेंगे तथा कुछ हिन्दी-अंग्रेजी शिक्षित सज्जनों को कार्यालय द्वारा प्रकाशित संस्कृत शिक्षणोपयोगी साहित्य का ग्राहक बनाकर हमें उपकृत करेंगे।

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
काशी।
पौष पूर्णिमा, २०१२

विनीत—
सम्पादक

ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार नामावली

(जिनके पद्य इस पुस्तक में संकलित किये गये हैं)

अमितगतिश्रावकाचार (अमितगति)
उद्भट सागर (उद्भट)
उद्योगपर्व (महाभारतम्)
उपदेशतरङ्गिणी (रत्नमन्दिरगणि)
कथारत्नाकर (हेमविजयगणि)
कलिविडम्बनम् (नीलकण्ठ दीक्षित)
गीतगोविन्दम् (जयदेव)
गीता (महाभारतम्)
चरकसंहिता (अग्निवेश)
चर्पटपञ्जरिका (श्रीमत्शङ्कराचार्य)
चाणक्यनीति (चाणक्य)
चाणक्यशतकम् (चाणक्य)
चित्रसेनपद्मावतीचरित्रम् (बुद्धिविजय)
तैत्तिरीय आरण्यक
दक्षस्मृति (दक्ष)
दुर्गासप्तशती (मार्कण्डेयपुराणम्)
दीनबन्ध्वष्टकम् (ब्रह्मानन्द)
दशरूपकम् (धनञ्जय)
धर्मबिन्दु (हरिभद्र)
नीतिशतकम् (भर्तृहरि)
पद्मानन्दमहाकाव्यम् (अमरचन्द्र)
पुरुषपरीक्षा (विद्यापति)
पुष्पबाणविलास (कालिदास)
पञ्चतन्त्रम् (विष्णुशर्मा)
पद्मपुराणम् (वेदव्यास)
पाञ्चरात्ररक्षा (वेदान्त देशिक)
प्रबन्धकोश (राजशेखर)
बोधसार (नरहरि)
ब्रह्मपुराणम् (वेदव्यास)
भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह
भट्टिकाव्यम् (भट्टि)
भोजप्रबन्ध (बल्लाल)
मनुस्मृति (मनु)
महाभारतम् (वेदव्यास)
मालतीमाधवम् (भवभूति)
योगवाशिष्ठम् (वाल्मीकि)
रसतरङ्गिणी (भानुमिश्र)
वज्जालग्गम् (अज्ञात)
वाल्मीकि रामायणम् (वाल्मीकि)
वासुदेवरसानन्द (शिवशम सूरि)
विदुरनीति (महाभारतम्)
विक्रमचरितम्
विक्रमोर्वशीयम् (कालिदास)
वैराग्यशतकम् (नीलकण्ठ दीक्षित)
श्रीगौराङ्गविरुदावली (रघुनन्दन गोस्वामी)
श्रीमद्भागवतम् (वेदव्यास)
शौनकीय नीतिसारः (गरुडपुराणम्)
शान्तिपर्व (महाभारतम्)
षट्पदी स्तोत्रम् (श्री शङ्कराचार्य)
सभारञ्जनशतकम् (नीलकण्ठ दीक्षित)
सिद्धान्तसंक्षेपनिरूपणम् (हरिराय)
सुभाषितरत्नसन्दोह (अमितगति)
सुभाषितरत्नाकर (कृष्णशास्त्री)
सुभाषितरत्नभाण्डागार (काशीनाथ)
हितोपदेश (नारायण)

प्रकरण तथा विषयसूची

* वाग्देवतायै नमः *

सरल-

संस्कृत-पद्य-संग्रहः



मङ्गलाचरणम्

यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं, यः सर्वं सर्वतश्च[1] यः।
यश्च[2] सर्वमयो नित्यं, तस्मै सर्वात्मने नमः॥

—शान्ति पर्व, ४७, ३२६

यस्मिन् जिसमें **सर्वं** सारा संसार है, **यतः** जिससे **सर्वं** सब कुछ (पैदा हुआ है) **यः** जो **सर्वं** सब कुछ है **च** तथा **यः** जो **सर्वतः** सब ओर है **च** और **यः** जो **सर्वमयः** सर्वमय है **तस्मै** उस **सर्वात्मने** सर्वात्मा—सर्वत्र विराजमान ईश्वर के लिए **नित्यं** सर्वदा **नमः** नमस्कार है।

यं न देवा न गन्धर्वा, न दैत्या न च दानवाः।
तत्त्वतो हि विजानन्ति, तस्मै सूक्ष्मात्मने नमः॥

—शान्ति पर्व, ४७, ३१२

यं जिसको **न देवाः** न देवता **न गन्धर्वाः** न गन्धर्व **न दैत्याः** न दैत्य **च** और **न दानवाः** न दानव **तत्त्वतः** ठीक ठीक **विजानन्ति** जानते हैं **तस्मै** उस **सूक्ष्मात्मने** सूक्ष्म स्वरूप परमात्मा को **नमः** नमस्कार है।

सन्धि—१–सर्वतः + च। २–यः + च।

सुबन्त प्रकरणम्

प्रथमा विभक्ति

विद्वान् की सर्वत्र पूजा होती है

स्वगृहे पूजितो मूर्खः, स्वग्रामे पूजितः प्रभुः।
स्वदेशे पूजितो राजा, विद्वान् सर्वत्र पूजितः ॥१॥

—भर्तृहरि सुभाषित संग्रह ८११

मूर्खः मूर्ख **स्वगृहे** अपने घर में **पूजितः** पूजित होता है, **प्रभुः** मालिक **स्वग्रामे** अपने गाँव में **पूजितः** पूजित होता है, **राजा** राजा **स्वदेशे** अपने देश में **पूजितः** पूजित होता है (परन्तु) **विद्वान्** विद्वान् पुरुष **सर्वत्र** सब जगह **पूजितः** पूजित होता है।

वे मनुष्य के रूप में पशु हैं

येषां न विद्या न तपो न दानं, न चापि[1] शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति[2] ॥२॥

—नीतिशतकम् १३.

येषां जिन लोगों को **न विद्या** न विद्या है, **न तपः** न तप है, **न दानं** न दान है, **न शीलं** न शील है, **न गुणः** न गुण है **च** और **न धर्मः** न धर्म है **ते** वे लोग **मृत्युलोके** इस मृत्युलोक में **भुवि** पृथिवी पर **भारभूता** भारस्वरूप होते हैं और **मनुष्यरूपेण** मनुष्य के रूप में **मृगाः** पशु **चरन्ति** विचरते हैं।

महत्त्व प्राप्ति की छः बाधायें

आलस्यं स्त्रीसेवा, सरोगता जन्मभूमि-वात्सल्यम्।
संतोषो भीरुत्वं, षड् व्याघाता महत्त्वस्य ॥३॥

—हितोपदेश २, ५

आलस्यम् आलस्य, **स्त्रीसेवा** स्त्री में विशेष आसक्ति, **सरोगता** रोगी रहना, **जन्मभूमि-वात्सल्यम्** जन्मभूमि से विशेष प्रेम रखना, **सन्तोषः** जैसी

सन्धि—१–च + अपि । २–मृगाः + चरन्ति ।

स्थिति हो उसी से सन्तुष्ट रहना, तथा **भीरुत्वम्** भीरुस्वभाव का होना (ये) **षट्** छः **महत्त्वस्य** महत्व प्राप्ति के, उन्नति के **व्याघाताः** बाधक हैं।

संसार में शोचनीय पुरुष कौन है?

ये बालभावे न पठन्ति विद्यां, ये यौवनस्था अधना अधीराः।
ते शोचनीया इह जीवलोके, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥४॥

—चाणक्यनीति ८, ११४

ये जो लोग **बालभावे** बचपन में **विद्यां** विद्या **न पठन्ति** नहीं पढ़ते हैं, **ये** जो **यौवनस्था** जवानी में आनेपर, जवान होकर **अधनाः** धन नहीं कमाते (तथा) **अधीराः** धैर्य धारण नहीं करते, **ते** वे लोग **इह** इस **जीवलोके** संसार में **शोचनीयाः** शोचनीय होते हैं और **मनुष्यरूपेण** मनुष्य के रूप में **मृगाः** पशु **चरन्ति** विचरते हैं।

दरिद्रता से सब कुछ नष्ट हो जाता है

कुलं शीलं च सत्यं च, प्रज्ञा तेजो धृतिर्बलम्[1]।
गौरवं प्रत्ययः स्नेहो, दारिद्र्येण विनश्यति ॥५॥

—चाणक्यनीति ८, ११४

कुलं कुल, **शीलं** शील, **सत्यं** सत्य, **प्रज्ञा** बुद्धि, **तेजः** तेज, **धृतिः** धैर्य, **बलं** बल, **गौरवं** महत्त्व, **प्रत्ययः** विश्वास, (तथा) **स्नेहः** प्रेम **दारिद्र्येण** दरिद्रता से **विनश्यति** नष्ट हो जाता है।

मधुर वाणी की महत्ता

न तथा शशी न सलिलं, न चन्दनरसो न शीतलच्छाया।
आह्लादयन्ति पुरुषं, यथा हि मधुराक्षरा वाणी ॥६॥

—उपदेशतरङ्गिणी ५, ११.

पुरुषं पुरुष को, **तथा** उस प्रकार **न शशी** न चन्द्रमा, **न सलिलं** न पानी, **न चन्दनरसः** न चन्दन का लेप (और) **न शीतलच्छाया** न शीतल

सन्धि—१—धृतिः + बलम्।

छाया (आदि वस्तुएँ) **आह्लादयन्ति** आह्लादित करती हैं **यथा** जिस प्रकार **मधुराक्षरा** मधुर अक्षरों से युक्त **वाणी** वाणी (आह्लादित करती है)।

ईश्वर किसकी सहायता करता है ?

उद्यमः साहसं धैर्यं, बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते[1] यत्र वर्तन्ते, तत्र देवः सहायकृत् ॥७॥

—विक्रमचरितम् ६८.

उद्यमः उद्योग, **साहसं** साहस, **धैर्यं** धीरज, **बुद्धिः** बुद्धि, **शक्तिः** शक्ति, **पराक्रमः** पराक्रम **एते** ये **षट्** छः (गुण) **यत्र** जहाँ **वर्तन्ते** होते हैं **तत्र** वहाँ **देवः** ईश्वर **सहायकृत्** सहायक (होता है)।

समाज में किसका गौरव होता है ?

शिष्यो भार्या शिशुर्भ्राता[2], पुत्रो दासः समाश्रितः।
यस्यैतानि[3] विनीतानि, तस्य लोके हि गौरवम् ॥८॥

—दक्षस्मृति ४, १४

शिष्यः शिष्य, **भार्या** स्त्री, **शिशुः** बच्चा, **भ्राता** भाई, **पुत्रः** पुत्र, **दासः** नौकर, **समाश्रितः** आश्रित जन **एतानि** ये **यस्य** जिसके **विनीतानि** विनीत सभ्य (होते हैं) **तस्य** उसका **लोके** संसार में **गौरवं** गौरव—बड़प्पन (होता है।)

विधाता ने इन्हें परोपकार के लिये ही बनाया है

सूर्यश्चन्द्रो[4] घनो वृक्षो, नदी धेनुश्च[5] सज्जनः।
एते परोपकाराय, विधात्रैव[6] विनिर्मिताः ॥९॥

—उद्भट सागर १२७.

सूर्यः सूर्य, **चन्द्रः** चन्द्र, **घनः** मेघ, **वृक्षः** पेड़, **नदी** नदी, **धेनुः** गाय, **च** तथा **सज्जनः** सज्जन पुरुष **एते** ये सब **विधात्रा** विधाता के द्वारा **परोपकाराय** परोपकार के लिये **एव** ही **विनिर्मिताः** बनाये गये हैं।

सन्धि — १—षट् + एते। २—शिशुः + भ्राता। ३—यस्य + एतानि। ४—सूर्यः + चन्द्रः। ५—धेनुः—च। ६—विधात्रा + एव।

मित्र के गुण

शुचित्वं त्यागिता शौर्यं, सामान्यं सुख-दुःखयोः।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च[1], सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥१०॥

शुचित्वम् ईमानदारी, त्यागिता त्याग, शौर्यं (संकट आदि के समय) शूरता, सुख-दुःखयोः सुख और दुःख में सामान्यम् समान भाव, दाक्षिण्यम् उदारता, अनुरक्तिः अनुराग च तथा सत्यता सचाई (ये सब) सुहृद्गुणाः मित्र के गुण हैं।

विद्या के समान कोई वस्तु नहीं

न च विद्यासमो बन्धुः, न च व्याधिसमो रिपुः।
न चाऽपत्यसमः[2] स्नेहो, न च दैवात् परं बलम् ॥११॥

—चाणक्यशतकम्, ७५.

विद्यासमः विद्या के समान बन्धुः बन्धु न नहीं है, व्याधिसमः रोग के समान रिपुः शत्रु न नहीं है, अपत्यसमः पुत्र के समान स्नेहः स्नेह न नहीं है च तथा दैवात् दैव से परं बढ़कर बलं बल न नहीं है।

धनहीन पुरुष की अवस्था

मानो वा दर्पो वा, विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा[3]।
सर्वं प्रणश्यति समं, वित्तविहीनो यदा पुरुषः ॥१२॥

—पञ्चतन्त्र ५, ३.

यदा जब पुरुषः पुरुष वित्तविहीनः धनहीन हो जाता है तब मानः प्रतिष्ठा, दर्पः अभिमान, विज्ञानं ज्ञान, विभ्रमः शिष्टाचार वा अथवा सुबुद्धिः अच्छी बुद्धि सर्वं यह सब समं एकसाथ प्रणश्यति नष्ट हो जाता है।

सन्धि—१—च + अनुरक्तिः + च। २—च + अपत्यसमः। ३—सुबुद्धिः + वा।

वे घर हैं या वन हैं ?

यत्र नास्ति दधि-मन्थन-घोषो, यत्र नो लघु-लघूनि शिशूनि ।
यत्र नास्ति[1] गुरु-गौरव-पूजा, तानि किं बत गृहाणि ! वनानि ॥१३॥

—सुभाषित रत्नभण्डागार

यत्र जिस घर में दधि-मन्थन-घोषः दही महने की आवाज नास्ति न हो, यत्र जिस घर में लघु-लघूनि छोटे-छोटे शिशूनि बच्चे नो न हों (तथा) यत्र जिस घर में गुरु-गौरव-पूजा गुरुजनों की गौरवपूर्वक पूजा नास्ति न हो तानि वे किं क्या गृहाणि घर हैं बत अथवा वनानि वन हैं ?

भोजन के बाद ही सब कुछ अच्छा लगता है

✓ शय्या वस्त्रं चन्दनं चारु हास्यं, वीणा वाणी सुन्दरी या च नारी ।
न भ्राजन्ते क्षुत्पिपासाऽतुराणाम्[2], सर्वारम्भाः[3] तण्डुल-प्रस्थ-मूलाः ॥१४॥

—सुभाषित रत्नभाण्डागार

शय्या सेज, वस्त्रं कपड़ा, चन्दनं चन्दन, चारु सुन्दर, हास्यं हास्य, वीणा वीणा, वाणी वचन, च और या जो सुन्दरी सुन्दर नारी स्त्री हो (यह सब वस्तुयें) क्षुत्-पिपासाऽतुराणां भूख और प्यास से पीड़ित लोगों को न भ्राजन्ते अच्छी नहीं लगतीं (इसलिये) सर्वारम्भाः सब काम तण्डुल-प्रस्थ-मूलाः एक सेर चावल के जड़ से ही होते हैं ।

वाणी से ही मनुष्य की शोभा होती है, भूषणों से नहीं

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्ज्वला[4]
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं, नाऽलङ्कृता[5] मूर्धजाः ।
वाण्येका[6] समलंकरोति पुरुषं, या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम् ॥१५॥

—भर्तृहरिशतकम् १९

सन्धि १—न + अस्ति । २—क्षुत्पिपासा + आतुराणाम् । ३—सर्व + आरम्भाः । ४—चन्द्र + उज्ज्वलाः । ५—न + अलङ्कृताः । ६—वाणी + एका ।

पुरुषं पुरुष को **केयूराः** केयूर **न विभूषयन्ति** नहीं शोभित करते, **चन्द्रोज्ज्वलाः** चन्द्रमा के समान उज्ज्वल **हाराः** हार **न** नहीं (शोभित करते), **स्नानं** स्नान **न** नहीं (शोभित करता) **विलेपनं** तेल-उबटन **न** नहीं (शोभित करता) **कुसुमं** फूल **न** नहीं (शोभित करता) तथा **अलङ्कृताः** सजाये हुए **मूर्धजाः** केश **न** नहीं (शोभित करते)। **एका** एकमात्र **वाणी** वाणी ही **पुरुषं** पुरुष को **समलंकरोति** शोभित करती है **या** जो **संस्कृता** (व्याकरण आदि से) संस्कार करके **धार्यते** धारण की जाती है। **भूषणानि** अन्य भूषण **सततं** बराबर **क्षीयन्ते** घिसते रहते हैं (इसलिये) **खलु** निश्चय ही **वाग्भूषणं** वाणीरूपी भूषण ही **भूषणं** (वास्तविक) भूषण है।

द्वितीया विभक्ति

वन्दना

रामं रामानुजं[1] सीतां, भरतं भरताऽग्रजम्[2]।
सुग्रीवं वायुसूनुं च, प्रणमामि मुहुर्मुहुः[3] ॥१६॥

रामम् राम को, **रामानुजम्** राम के अनुज (छोटे भाई) को **सीताम्** सीता को, **भरतम्** भरत को, **भरताग्रजम्** भरत के अग्रज (बड़े भाई) को, **सुग्रीवं** सुग्रीव को, **च** तथा **वायुसूनुं** वायु के पुत्र (हनुमान्) को **मुहुः मुहुः** बार-बार **प्रणमामि** नमस्कार करता हूँ।

धार्मिक पुरुष किसे किस दृष्टि से देखते हैं ?

मातृवत् परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि, वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः ॥१७॥

—पञ्चतन्त्रम् १, ३५४.

धर्मबुद्धयः धार्मिक पुरुष **परदाराणि** दूसरों की स्त्रियों को **मातृवत्** माता के समान, **परद्रव्याणि** दूसरों के द्रव्यों को **लोष्टवत्** मिट्टी के समान (तथा) **सर्वभूतानि** सब प्राणियों को **आत्मवत्** अपने समान **वीक्षन्ते** देखते हैं।

सन्धि—१—राम + अनुजम्। २—भरत + अग्रजम्। ३—मुहुः मुहुः।

कैसे वर को कन्या देनी चाहिये ?

कुलं च शीलं च सनाथतां च, विद्यां च वित्तं च वपुर्वयश्च ।[१]
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया, कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्[२] ॥१८॥
—पञ्चतन्त्रम् ३, १८८.

कुलं कुल को, शीलं शील को, सनाथतां सनाथता को, विद्यां विद्या को, वित्तं धन को, वपुः शरीर को च तथा वयः अवस्था को एतान् इन सप्त सात गुणान् गुणों को विचिन्त्य सोचकर-देखकर बुधैः विद्वानों को कन्या कन्या देया देनी चाहिये शेषम् शेष बातें अचिन्तनीयम् नहीं सोचनी चाहिये ।

किसके पास लक्ष्मी स्वयं आ जाती है ?

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं,[३] क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।[४]
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च, लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥१९॥
—पञ्चतन्त्रम् २, ११६.

उत्साहसम्पन्नम् उत्साह से युक्त, अदीर्घसूत्रम् दीर्घसूत्रता न करनेवाले, क्रियाविधिज्ञं काम करने की विधि जाननेवाले, व्यसनेषु असक्तम् व्यसनो में न रहनेवाले, शूरं वीर, कृतज्ञं कृतज्ञ च तथा दृढसौहृदम् दृढ़ मित्रता रखनेवाले (पुरुष) के पास निवासहेतोः निवास करने के लिये लक्ष्मीः लक्ष्मी स्वयं अपने आप याति चली जाती है ।

लोभ की महिमा

मातरं पितरं पुत्रं, भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।
लोभाविष्टो[५] नरो हन्ति, स्वामिनं वा सहोदरम् ॥२०॥
—सुभाषित रत्नभाण्डागार

लोभाविष्टः लोभ से आकुल नरः मनुष्य मातरं माता को, पितरं पिता

सन्धि—१—वपुः + वयः + च । २—शेषम् + अचिन्तनीयम् । ३—उत्साहसम्पन्नम् + अदीर्घसूत्रम् । ४—व्यसनेषु + असक्तम् । ५—लोभ + आविष्टः ।

को, **पुत्रं** पुत्र को, **भ्रातरं** भाई को, **वा** अथवा **सुहृत्तमं** उत्तम मित्र को, **स्वामिनं** स्वामी को **वा** अथवा **सहोदरं** सहोदर भाई को **हन्ति** मार डालता है।

किन दोषों को छोड़ देना चाहिये ?

कामं क्रोधं तथा लोभं, कार्पण्यं कपटं कलिम्।
चौर्यं च व्यभिचारं च, कल्याणार्थी परित्यजेत् ॥२१॥

कल्याणार्थी अपना कल्याण चाहने वाला मनुष्य **कामं** काम को, **क्रोधं** क्रोध को **तथा** और **लोभं** लोभ को, **कार्पण्यं** कृपणता को, **कपटं** कपट को, **कलिं** कलह को, **चौर्यं** चोरी को **च** तथा **व्यभिचारं** व्यभिचार को **परित्यजेत्** छोड़ दे।

किससे किसकी शोभा होती है ?

गुणो भूषयते रूपं, शीलं भूषयते कुलम्।
सिद्धिर्भूषयते[1] विद्यां, भोगो भूषयते धनम् ॥२२॥

—चाणक्यनीति ८, १४

गुणः गुण **रूपं** रूप को **भूषयते** भूषित करता है, **शीलं** शील **कुलं** कुल को **भूषयते** भूषित करता है, **सिद्धिः** सिद्धि **विद्यां** विद्या को **भूषयते** भूषित करती है (तथा) **भोगः** भोग **धनं** धन को **भूषयते** भूषित करता है।

सज्जन-समागम का महत्त्व

गङ्गा पापं शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुस्तथा[2]।
पापं तापं च दैन्यं च, हन्ति साधु-समागमः ॥२३॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार

गंगा गंगा **पापं** पाप को, **शशी** चन्द्रमा **तापं** ताप को, **तथा** और **कल्पतरुः** कल्पवृक्ष **दैन्यं** दीनता को **हन्ति** दूर करता है (परन्तु) **साधु-समागमः** सज्जन पुरुषों का समागम **पापं** पाप **तापं** ताप **च** तथा **दैन्यं** दीनता (इन तीनों को) **हन्ति** दूर कर देता है।

सन्धि—१—सिद्धिः + भूषयते। २—कल्पतरुः + तथा।

ज्ञानहीन सन्यासी

यथा तानं विना रागो यथा मानं विना नृपः ।
यथा दानं विना हस्ती तथा ज्ञानं विना यतिः ॥२४॥

—भामिनीविलास १, ११६

यथा जैसे तानं विना तान के बिना रागः राग, यथा जैसे मानं विना मान के बिना नृपः राजा, यथा जैसे दानं विना मद के बिना हस्ती हाथी तथा उसी प्रकार ज्ञानं विना ज्ञान के बिना यतिः सन्यासी (शोभित नहीं होता) ।

कौन किसे नष्ट कर देता है ?

प्रमादः सम्पदं हन्ति, प्रश्रयं हन्ति विस्मयः ।
व्यसनं हन्ति विनयं, हन्ति शोकश्च धीरताम् ॥२५॥

—कुन्दमाला तृतीय अङ्क २

प्रमादः प्रमाद—असावधानी सम्पदम् सम्पत्ति को हन्ति नष्ट कर देता है, विस्मयः विस्मय प्रश्रयं प्रश्रय को हन्ति नष्ट कर देता है, व्यसनम् व्यसन विनयं विनय को हन्ति नष्ट कर देता है च तथा शोकः शोक धीरताम् धैर्य्य को हन्ति नष्ट कर देता है ।

प्राणों के निकल जाने के बाद ही—

सुजनाः परोपकारं, सूराः शस्त्रं धनं कृपणाः ।
कुलवत्यो मन्दाक्षं, प्राणात्यय एव मुञ्चन्ति ॥२६॥

—सुभाषितरत्नाकर

सुजनाः सज्जन पुरुष परोपकारं परोपकार को, शूराः वीर पुरुष शस्त्रं शस्त्र को, कृपणाः कृपण लोग धनं धन को (तथा) कुलवत्यः कुलीन स्त्रियाँ मन्दाक्षं लज्जा को प्राणात्यये प्राणों के चले जाने पर एव ही मुञ्चन्ति छोड़ती हैं ।

तृतीया विभक्ति

मनुष्य किन बातों से आदर पाता है ?

विद्यया वपुषा वाचा, वस्त्रेण विभवेन च ।
वकारैः पञ्चभिर्युक्तो[1], नरो भवति पूजितः ॥२७॥

विद्यया विद्या से, **वपुषा** शरीर से, **वाचा** वाणी से, **वस्त्रेण** वस्त्र से **च** और **विभवेन** विभव से **पञ्चभिः** इन पाँच **वकारैः** वकारों से **युक्तः** युक्त **नरः** मनुष्य **पूजितः** पूजित **भवति** होता है ।

इन्द्रिय-संयम का महत्त्व

किं विद्यया किं तपसा, किं योगेन श्रुतेन च ।
किं विविक्तेन मौनेन, स्त्रीभिर्यस्य[2] मनो हृतम् ॥२८॥

यस्य जिस पुरुष का **मनः** मन **स्त्रीभिः** स्त्रियों के द्वारा **हृतं** हर लिया गया हो तो (उसकी) **विद्यया किं** विद्या से क्या, **तपसा किं** तपस्या से क्या, **योगेन किं** योग से क्या, **श्रुतेन किं** अध्ययन से क्या **च** तथा **विविक्तेन** एकान्त **मौनेन किं** मौन से क्या ?

भगवान् कैसे प्रसन्न होते हैं ?

तितिक्षया करुणया, मैत्र्या चाऽखिलजन्तुषु[3] ।
समत्वेन च सर्वात्मा, भगवान् सम्प्रसीदति ॥२९॥

श्रीमद्भागवतम्

तितिक्षया तितिक्षा से, **करुणया** करुणा से, **च** और **अखिलजन्तुषु** समस्त प्राणियों में **मैत्र्या** मैत्रीभाव रखने से **च** और **समत्वेन** सबके साथ समता का भाव रखने से **सर्वात्मा** सबके भीतर रहने वाले **भगवान्** भगवान् **सम्प्रसीदति** प्रसन्न होते हैं ।

सन्धि—१—पञ्चभिः + युक्तः । २—स्त्रीभिः + यस्य । ३—च + अखिल-जन्तुषु ।

क्या करने से मनुष्य कैसा होता है ?

दानेन भोगी भवति, मेधावी वृद्ध-सेवया ।
अहिंसया च दीर्घायुः, इति प्राहुर्मनीषिणः[1] ॥३०॥

दानेन दान देने से (मनुष्य) **भोगी** भोगवान् **भवति** होता है, **वृद्ध-सेवया** वृद्ध पुरुषों की सेवा से **मेधावी** बुद्धिमान होता है, **च** और **अहिंसया** अहिंसा से **दीर्घायुः** दीर्घजीवी होता है, **इति** ऐसा **मनीषिणः** विद्वान् **प्राहुः** कहते हैं ।

मनुष्यों पर संकट कैसे आते हैं ?

अनभ्यासेन विद्यानाम्, असंसर्गेण धीमताम् ।
अनिग्रहेण चाऽक्षाणां[2], जायते व्यसनं महत् ॥३१॥

विद्यानां विद्याओं का **अनभ्यासेन** अभ्यास न करने से, **धीमतां** विद्वानों का **असंसर्गेण** संसर्ग न होने से **च** तथा **अक्षाणां** इन्द्रियों के **अनिग्रहेण** अनिग्रह से—काबू में न रखने से **महत्** भारी **व्यसनं** दुःख **जायते** होता है ।

किसके बिना क्या नहीं होता ?

न धैर्येण विना लक्ष्मीः, न शौर्येण विना जयः ।
न ज्ञानेन विना मोक्षो, न दानेन विना यशः ॥३२॥

—सभारञ्जनशतकम् ४२

धैर्येण धीरज के **बिना लक्ष्मीः न** लक्ष्मी नहीं (मिलती) । **शौर्येण** शूरता के **विना** बिना **जयः न** विजय नहीं प्राप्त होता । **ज्ञानेन विना** ज्ञान के बिना **मोक्षो न** मोक्ष नहीं होता (तथा) **दानेन विना** दान के बिना **यशः न** यश नहीं मिलता ।

मनुष्य की चार बातों से परीक्षा होती है

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षण-च्छेदन-ताप-ताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥३३॥

—सुभाषितरत्नाकर

सन्धि—१—प्राहुः + मनीषिणः । २—च + अक्षाणाम् ।

यथा जैसे **कनकं** सुवर्ण **निघर्षण-च्छेदन-ताप-ताड़नैः** घिसने, छेदने, तपाने तथा पीटने इन **चतुर्भिः** चार (उपायों) से **परीक्ष्यते** जाँचा जाता है **तथा** उसी प्रकार **पुरुषः** मनुष्य **श्रुतेन** ज्ञान से, **शीलेन** शील से, **कुलेन** कुल से तथा **कर्मणा** कर्म से (इन) **चतुर्भिः** चार बातों से **परीक्ष्यते** जाँचा जाता है—पहचाना जाता है।

विद्वान् और मूर्ख का समय कैसे बीतता है ?

काव्य-शास्त्र-विनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा ॥३४॥

—हितोपदेश १, १

धीमताम् विद्वानों का **कालः** समय **काव्य-शास्त्र-विनोदेन** काव्यों तथा विभिन्न शास्त्रों के विनोद से **गच्छति** बीतता है **तु** परन्तु **मूर्खाणां** मूर्खों का (समय) **व्यसनेन** व्यसन से, **निद्रया** निद्रा से **वा** अथवा **कलहेन** लड़ाई-झगड़े से (बीतता है।)

क्या करने से मनुष्य का विनाश नहीं होता ?

कुलीनैः सह सम्पर्कं, पण्डितैः सह मित्रताम्।
ज्ञातिभिश्च[1] समं मेलं, कुर्वाणो न विनश्यति ॥३५॥

—चाणक्यशतकम् ५८.

कुलीनैः सह कुलीन लोगों के साथ **सम्पर्कं** सम्बन्ध, **पण्डितैः सह** विद्वानों के साथ **मित्रतां** मित्रता **च** तथा **ज्ञातिभिः समं** भाई-बन्धुओं के साथ **मेलं** मेल **कुर्वाणः** करता हुआ (मनुष्य) **न विनश्यति** विनष्ट नहीं होता।

किसके बिना कौन व्यर्थ है ?

नयेन नेता विनयेन शिष्यः, शीलेन लिङ्गी प्रशमेन साधुः।
जीवेन देहः सुकृतेन देही, वित्तेन गेही रहितो न किञ्चित् ॥३६॥

—पद्मानन्द महाकाव्यम् २, २४.

सन्धि—१—ज्ञातिभिः + च।

नयेन नीति से **रहितः** रहित **नेता** नेता, **विनयेन** विनय से (रहित) **शिष्यः** शिष्य, **शीलेन** शील से (रहित) **लिङ्गी** ब्रह्मचारी, **प्रशमेन** शान्ति से (रहित) **साधुः** साधु, **जीवेन** जीवात्मा से (रहित) **देहः** शरीर, **सुकृतेन** सदाचार से (रहित) **देही** मनुष्य (तथा) **वित्तेन** धन से (रहित) **गेही** गृहस्थ **किञ्चित्** कुछ **न** नहीं है अर्थात् किसी काम का नहीं।

ज्ञान से मुक्ति होती है

दानेन पाणिर्न[1] तु कङ्कणेन, स्नानेन शुद्धिर्न[2] तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न[3] तु भोजनेन, ज्ञानेन मुक्तिर्न[4] तु मण्डनेन ॥३७॥

—चाणक्यनीति १७, १८.

दानेन दान से **पाणिः** हाथ (शोभित होता है) **न तु** न कि **कङ्कणेन** कंकण से। **स्नानेन** स्नान से **शुद्धिः** (शरीर की) शुद्धि होती है **न तु** न कि **चन्दनेन** चन्दन से, **मानेन** सम्मान से **तृप्तिः** तृप्ति होती है **न तु** न कि **भोजनेन** भोजन से (और) **ज्ञानेन** ज्ञान से **मुक्तिः** मुक्ति होती है **न तु** न कि **मण्डनेन** (शरीर को) सजाने से।

कौन काम किसके हाथ से अच्छा लगता है ?

दानमात्मीयहस्तेन[5], मातृहस्तेन भोजनम्।
तिलकं विप्रहस्तेन, परहस्तेन मर्दनम् ॥३८॥

—चित्रसेन-पद्मावती चरित्रम् २८६

आत्मीयहस्तेन अपने हाथ से **दानम्** दान, **मातृहस्तेन** माता के हाथ से **भोजनम्** भोजन, **विप्रहस्तेन** ब्राह्मण के हाथ से **तिलकम्** तिलक (तथा) **परहस्तेन** दूसरे के हाथ से **मर्दनम्** मर्दन (देह दबवाना) (उत्तम होता है)।

किससे क्या प्राप्त होता है ?

बुद्ध्या भयं प्रणुदति, तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं, शान्तिं योगेन विन्दति ॥३९॥

—विदुरनीति ३६, ५२

सन्धि—१—पाणिः + न। २—शुद्धिः + न। ३—तृप्तिः न। ४—मुक्तिः + न। ५—दानम् + आत्मीयहस्तेन।

बुद्धया बुद्धि से **भयं** भय को **प्रणुदति** दूर करता है, **तपसा** तप से **महत्** ईश्वर को **विन्दते** प्राप्त करता है, **गुरुशुश्रूषया** गुरुसेवा से **ज्ञानं** ज्ञान प्राप्त करता है (तथा) **योगेन** योग से **शान्तिं** शान्ति को **विन्दति** प्राप्त करता है।

वे निश्चय ही मूर्ख हैं !

दम्भेन मैत्रीं कपटेन धर्मं, सुखेन विद्यां परुषेण नारीम्।
परोपतापेन समृद्धिभावं, वाञ्छन्ति ये व्यक्तमपण्डितास्ते[1] ॥४०॥

—कथारत्नाकर

ये जो (मनुष्य) **दम्भेन** दम्भ से **मैत्रीं** मित्रता, **कपटेन** कपट से **धर्मं** धर्म, **सुखेन** सुख से **विद्यां** विद्या, **परुषेण** कठोरता से **नारीं** स्त्री (तथा) **परोपतापेन** दूसरों के उत्पीड़न से **समृद्धिभावं** समृद्ध होना **वाञ्छन्ति** चाहते हैं **ते** वे **व्यक्तं** निस्सन्देह **अपण्डिताः** मूर्ख हैं।

किसके बिना किसकी शोभा नहीं होती ?

अङ्गेन गात्रं नयनेन वक्त्रं, न्यायेन राज्यं लवणेन भोज्यम्।
धर्मेण हीनं खलु जीवितं च, न राजते चन्द्रमसा विना निशा ॥४१॥

—भर्तृहरि सुभाषित संग्रह ३५६

अङ्गेन हीनं अंग से हीन **गात्रं** शरीर, **नयनेन हीनं** नयन से हीन **वक्त्रम्** मुँह, **न्यायेन हीनं** न्याय से हीन **राज्यम्** राज्य, **लवणेन हीनं** नमक से हीन **भोज्यम्** भोजन, **धर्मेण हीनं** धर्म से हीन **जीवितम्** जीवन **च** तथा **चन्द्रमसा विना** चन्द्रमा के बिना **निशा** रात **न राजते** शोभित नहीं होती।

चतुर्थी विभक्ति

परोपकार ही जीवन का आदर्श

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं[2] शरीरम् ॥४२॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार

सन्धि १—व्यक्तम् + अपण्डिताः + ते । २—परोपकारार्थम् + इदम् ।

वृक्षाः वृक्ष **परोपकाराय** दूसरों के उपकार के लिये **फलन्ति** फलते हैं। **नद्यः** नदियाँ **परोपकाराय** दूसरों के उपकार के लिये **वहन्ति** बहती हैं। **गावः** गायें **परोपकाराय** दूसरों के उपकार के लिये **दुहन्ति** दूध देती हैं। **इदं** यह **शरीरं** शरीर **परोपकारार्थम्** दूसरों के उपकार के लिये है।

किसे क्या देना चाहिये

दरिद्राय धनं देयम्, ज्ञानं देयं जडाय च।
पिपासिताय पानीयं, क्षुधिताय च भोजनम् ॥४३॥

दरिद्राय दरिद्र को **धनं** धन **देयं** देना चाहिये **च** और **जडाय** अज्ञानी को **ज्ञानं** ज्ञान **देयं** देना चाहिये। **पिपासिताय** प्यासे को **पानीयं** पानी **च** और **क्षुधिताय** भूखे को **भोजनं** भोजन देना चाहिये।

दुर्जनों का धन

न देवाय न धर्माय, न बन्धुभ्यो न चाऽर्थिने[1]।
दुर्जनस्याऽर्जितं[2] वित्तं, भुज्यते राजतस्करैः ॥४४॥

—हितोपदेशः १, १६०

दुर्जनस्य दुष्ट आदमी का **अर्जितं** कमाया हुआ **वित्तं** धन **न देवाय** न देवता के लिये **न धर्माय** न धर्म के लिये **न बन्धुभ्यः** न बन्धुओं के लिये **च** और **न अर्थिने** न याचकों के लिये (होता है)। वह धन **राजतस्करैः** सरकार तथा चोरों द्वारा **भुज्यते** खाया जाता है।

किससे किसका नाश होता है?

हेला स्यात् कार्यनाशाय, बुद्धिनाशाय निर्धनम्।
याचना माननाशाय, कुलनाशाय भोजनम् ॥४५॥

—चाणक्यशतकम् ६६.

हेला उपेक्षा कार्यनाशाय कार्यनाश के लिये, **निर्धनं** दरिद्रता **बुद्धिनाशाय** बुद्धिनाश के लिये, **याचना** याचना **माननाशाय** माननाश के लिये

सन्धि—१-च + अर्थिने। २-दुर्जनस्य + अर्जितम्।

(तथा) भोजनं सब जगह का भोजन करना कुलनाशाय कुल नाश के लिये (कारण होता है) ।

दुर्जन और सज्जन का भेद

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्[1], ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥४६॥

खलस्य दुर्जन मनुष्य की विद्या विद्या विवादाय वाद-विवाद करने के लिये, धनं धन मदाय अभिमान करने के लिये, (तथा) शक्तिः बल परेषां दूसरों को परिपीडनाय पीड़ा देने के लिये होती है । परन्तु साधोः सज्जन पुरुष का एतत् यह विद्या धन तथा शक्ति विपरीतं इसके विपरीत ज्ञानाय ज्ञान के लिये, दानाय दान देने के लिये (तथा) रक्षणाय दूसरों की रक्षा करने के लिये होता है ।

वही वन्दनीय पुरुष है

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या, चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय ।
परोपकाराय वचांसि यस्य, वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः[2] स एव ॥४७॥

यस्य जिस पुरुष की लक्ष्मीः सम्पत्ति दानाय दान करने के लिये, विद्या विद्या सुकृताय सत्कर्म करने के लिये, चिन्ता चिन्तन परब्रह्मविनिश्चयाय परब्रह्म का निश्चय करने के लिये (तथा) वचांसि वचन परोपकाराय दूसरों का उपकार करने के लिये हैं स एव वही त्रिलोकीतिलकः तीनों लोकों में तिलक के समान शिरोधार्य पुरुष वन्द्यः वन्दनीय है—वन्दना के योग्य है ।

पञ्चमी विभक्ति

लोभ ही सब पापों का कारण है

लोभात् क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्च[3] नाशश्च[4], लोभः पापस्य कारणम् ॥४८॥

—हितोपदेश १, २७

सन्धि—१—साधोः + विपरीतम् + एतत् । २—वन्द्यः + त्रिलोकीतिलकः । ३—लोभात् + मोहः + च । ४—नाशः + च ।

लोभात् लोभ से **क्रोधः** क्रोध **प्रभवति** होता है, **लोभात्** लोभ से **कामः** काम **प्रजायते** पैदा होता है, **लोभात्** लोभ से **मोहः** मोह **च** तथा **नाशः** नाश होता है (इसलिये) **लोभः** लोभ **पापस्य** पाप का **कारणं** कारण है।

किससे कौन श्रेष्ठ होता है ?

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः, ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठाः, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥४९॥

अज्ञेभ्यः अज्ञ लोगों से **ग्रन्थिनः** ग्रन्थ पढ़नेवाले लोग **श्रेष्ठाः** श्रेष्ठ हैं, (केवल) **ग्रन्थिभ्यः** ग्रन्थ पढ़नेवालों से (उन्हें) **धारिणः** धारण करनेवाले **वराः** श्रेष्ठ हैं। **धारिभ्यः** धारण करनेवालों से **ज्ञानिनः** ज्ञानी (ग्रन्थों के अर्थ को ठीक-ठीक समझनेवाले) **श्रेष्ठाः** श्रेष्ठ हैं तथा **ज्ञानिभ्यः** ज्ञानियों से **व्यवसायिनः** उसके अनुसार व्यवसाय करनेवाले—काम करनेवाले (श्रेष्ठ हैं)।

बुद्धिनाश से मनुष्य का नाश

ध्यायतो विषयान् पुंसः, सङ्गस्तेषूपजायते[1]।
सङ्गात् संजायते कामः, कामात् क्रोधोऽभिजायते[2] ॥ ५० ॥
क्रोधाद् भवति संमोहः, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ ५१ ॥
—गीता, २, ६२–६३

विषयान् विषयों का **ध्यायतः** ध्यान करने वाले **पुंसः** पुरुष का **तेषु** उन (विषयों) में **सङ्गः** आसक्ति **उपजायते** हो जाती है, **सङ्गात्** सङ्ग से **कामः** कामवासना **संजायते** उत्पन्न होती है, **कामात्** काम से **क्रोधः** क्रोध **अभिजायते** उत्पन्न होता है, **क्रोधात्** क्रोध से **संमोहः** मोह **भवति** पैदा होता है, **संमोहात्** मोह से **स्मृतिविभ्रमः** स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है, **स्मृतिभ्रंशात्** स्मरणशक्ति के नष्ट हो जाने से **बुद्धिनाशः** बुद्धि का नाश हो जाता है (और) **बुद्धिनाशात्** बुद्धि का नाश होने से **प्रणश्यति** (मनुष्य) नष्ट हो जाता है।

सन्धि—१–सङ्गः + तेषु + उपजायते। २–क्रोधः + अभिजायते।

कौन कौन लोग स्वर्गगामी होते हैं ?

व्रतं रक्षन्ति ये कोपात्, श्रियं रक्षन्ति मत्सरात्।
विद्यां मानापमानाभ्याम्, आत्मानं तु प्रमादतः ॥ ५२ ॥
मतिं रक्षन्ति ये लोभात्, मनो रक्षन्ति कामतः।
धर्मं रक्षन्ति दुःसङ्गात्, ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ५३ ॥

—पद्मपुराण पाताल खण्ड ९२७–२२–२३

ये जो लोग **कोपात्** कोप से **व्रतं** व्रत को **रक्षन्ति** बचाते हैं, **मत्सरात्** मात्सर्य से **श्रियं** सम्पत्ति को **रक्षन्ति** बचाते हैं, **मानाऽपमानाभ्यां** मान-अपमान से **विद्यां** विद्या को (बचाते हैं), **प्रमादतः** प्रमाद से **आत्मानं** अपने को (बचाते है), **ये** जो लोग **लोभात्** लोभ से **मतिं** बुद्धि को **रक्षन्ति** बचाते हैं, **कामतः** कामवासना से **मनः** मन को **रक्षन्ति** बचाते हैं, **दुःसङ्गात्** दुष्ट पुरुषों के संग से **धर्मं** धर्म को **रक्षन्ति** बचाते हैं **ते** वे **नराः** मनुष्य **स्वर्गगामिनः** स्वर्गगामी होते हैं ।

अन्यायवादी मनुष्य नरकगामी होता है

मानाद् वा यदि वा क्रोधात्, लोभाद् वा यदि वा भयात्।
यो न्यायमन्यथा[1] ब्रूते, स याति नरकं नरः ॥ ५४

—पञ्चतन्त्रम् ३, १०४

यः जो (पञ्च या सभासद्) **मानात्** अभिमान से **वा** अथवा **क्रोधात्** क्रोध से **वा** अथवा **लोभात्** लोभ से **यदि वा** अथवा **भयात्** भय से **न्यायं** न्याय को **अन्यथा** विपरीत रूप से—अन्याय के रूप में **ब्रूते** बोलता है **स** वह **नरः** मनुष्य **नरकं** नरक को **याति** जाता है ।

विवेक का महत्त्व

विवेकात् प्राप्यते लक्ष्मीः, विवेकात् कामितं सुखम्।
विवेकात् साध्यते धर्मो, विवेकान् मुक्तिराप्यते[2] ॥ ५५ ॥

—विवेकमार्तण्ड १, ४३.

सन्धि—१-न्यायम् + अन्यथा । २—विवेकान् + मुक्तिः + आप्यते ।

विवेकात् विवेक से **लक्ष्मीः** लक्ष्मी **प्राप्यते** पायी जाती है, **विवेकात्** विवेक से **कामितं** अभिलषित **सुखं** सुख (पाया जाता है), **विवेकात्** विवेक से **धर्मः** धर्म **साध्यते** सिद्ध किया जाता है (तथा) **विवेकात्** विवेक से **मुक्तिः** मुक्ति **आप्यते** पायी जाती है ।

इसलिये अभिमान नहीं करना चाहिये

धनिभ्यो धनिनः सन्ति, वादिभ्यः सन्ति वादिनः ।
बलिभ्यो बलिनः सन्ति, तस्माद्दर्पं[1] त्यजेद् बुधः ॥ ५६ ॥

—कथारत्नाकर

धनिभ्यः धनियों से भी **धनिनः** धनी हैं । **वादिभ्यः** बोलने वालों से भी **वादिनः** बोलने वाले हैं । **बलिभ्यः** बलवानों से भी **बलिनः** बली **सन्ति** हैं । **तस्मात्** इसलिये **बुधः** बुद्धिमान् व्यक्ति **दर्पं** अभिमान को **त्यजेत्** छोड़ दे ।

एक का पाप दूसरे पर कैसे जाता है ?

आलापात् गात्रसंस्पर्शात्, संसर्गात् सहभोजनात् ।
आसनात् शयनात् यानात्, पापं संक्रमते नृणाम् ॥ ५७ ॥

—शौनकीय नीतिसारः-६

आलापात् बातचीत करने से, **गात्रसंस्पर्शात्** शरीर के स्पर्श से, **संसर्गात्** संसर्ग से, **सहभोजनात्** एक साथ भोजन करने से, **आसनात्** एक साथ बैठने से, **शयनात्** एक साथ सोने से (तथा) **पानात्** उच्छिष्ट पानी पीने से **नृणाम्** मनुष्यों का **पापं** पाप **संक्रमते** एक से दूसरे पर जाता है ।

षष्ठी विभक्ति

किस अङ्ग का क्या भूषण है ?

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कण्ठस्य भूषणम् ।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणैः किं प्रयोजनम् ॥५८॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

सन्धि—१-तस्मात् + दर्पम् ।

हस्तस्य हाथ का **भूषणं** भूषण **दानं** दान है, **कण्ठस्य** कण्ठ का **भूषणं** भूषण **सत्यं** सत्य भाषण है, **श्रोत्रस्य** कान का **भूषणं** भूषण **शास्त्रं** शास्त्र है, (फिर अन्य) **भूषणैः** भूषणों से **किं** क्या **प्रयोजनं** मतलब ?

किसके लिये क्या सुन्दर है ?

भार्यायाः सुन्दरो भर्ता, वेश्यायाः सुन्दरो धनी ।
श्रीदेव्याः सुन्दरः शूरो, भारत्याः सुन्दरः सुधीः ॥५६॥

—सभारञ्जनशतकम् ४६

भार्यायाः स्त्री के लिये **सुन्दरः** सुन्दर **भर्ता** पति होता है, **वेश्यायाः** वेश्या के लिये **सुन्दरः** सुन्दर **धनी** धनवान् होता है, **श्रीदेव्याः** लक्ष्मी के लिये **सुन्दरः** सुन्दर **शूरः** शूर होता है (तथा) **भारत्याः** सरस्वती के लिये **सुन्दरः** सुन्दर **सुधीः** विद्वान् होता है ।

किसका क्या भूषण है ?

नरस्याऽभरणं[1] रूपं, रूपस्याऽभरणं[2] गुणः ।
गुणस्याऽभरणं[3] ज्ञानं, ज्ञानस्याऽभरणं[4] क्षमा ॥६०॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

नरस्य मनुष्य का **आभरणं** भूषण **रूपं** रूप है, **रूपस्य** रूप का **आभरणं** भूषण **गुणः** गुण है, **गुणस्य** गुण का **आभरणं** भूषण **ज्ञानं** ज्ञान है (तथा) **ज्ञानस्य** ज्ञान का **आभरणं** भूषण **क्षमा** क्षमा, सहिष्णुता है ।

किस वस्तु का क्या फल है ?

बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च, देहस्य सारं व्रतधारणं च ।
अर्थस्य सारं किल पात्रदानं, वाचः फलं प्रीतिकरं नराणाम् ॥६१॥

—उपदेशतरङ्गिणी ५, १

सन्धि—१–नरस्य+आभरणम्, २–रूपस्य+आभरणम्, ३–गुणस्य+आभरणम्, ४–ज्ञानस्य+आभरणम् ।



बुद्धेः बुद्धि का, **फलं** फल, **तत्त्वविचारणं** तत्त्व का विचार करना है, **देहस्य** देह का, **सारं** फल, **व्रतधारणं** संयम-नियम का पालन है, **अर्थस्य** धन का, **सारं** फल **पात्रदानं** सत्पात्रों को दान देना है (तथा) **वाचः** वाणी का, **फलं** फल, **नराणाम्** मनुष्यों के साथ **प्रीतिकरं** प्रेम उत्पन्न करना है ।

किसके लिये क्या भूषण है ?

ताराणां भूषणं चन्द्रो, नारीणां भूषणं पतिः ।
पृथिव्या भूषणं राजा, विद्या सर्वस्य भूषणम् ॥६२॥

—चाणक्यशतकम् ८

ताराणां ताराओं का **भूषणं** भूषण **चन्द्रः** चन्द्रमा है, **नारीणां** स्त्रियों का **भूषणं** भूषण **पतिः** पति है, **पृथिव्याः** पृथ्वी का **भूषणं** भूषण **राजा** राजा है (परन्तु) **विद्या** विद्या **सर्वस्य** सबका **भूषणं** भूषण है ।

किसको किससे भय है ?

पादपानां भयं वातात्, पद्मानां शिशिराद् भयम् ।
पर्वतानां भयं वज्रात्, साधूनां दुर्जनाद् भयम् ॥६३॥

—चाणक्यशतकम् ८४

पादपानां वृक्षों को **वातात्** वायु से **भयं** भय (होता है), **पद्मानां** कमलों को **शिशिरात्** ठंढी से **भयं** भय (होता है), **पर्वतानां** पर्वतों को **वज्रात्** वज्र से **भयं** भय (होता है) तथा **साधूनां** सज्जनों को **दुर्जनात्** दुर्जन से **भयं** भय होता है ।

किसके लिये क्या बल है ?

दुर्बलस्य बलं राजा, बालानां रोदनं बलम् ।
बलं मूर्खस्य मौनित्वं, चौराणामनृतं[1] बलम् ॥६४॥

—चाणक्यशतकम् ६८

दुर्बलस्य दुर्बल का **राजा** राजा **बलं** बल (सहारा) होता है, **बालानां**

सन्धि—१—चौराणाम् + अनृतम् ।

बालकों का रोदनं रोना बलं बल होता है, मूर्खस्य मूर्ख का मौनित्वं मौन धारण कर लेना बलं बल होता है (तथा) चौराणां चोरों का अनृतं झूठ बोलना बलं बल होता है।

किससे किसकी शोभा है ?

कोकिलानां स्वरो रूपं, नारीरूपं पतिव्रतम्।
विद्यारूपं कुरूपाणां, क्षमा रूपं तपस्विनाम् ॥६५॥

—चाणक्यशतकम्, ४६

कोकिलानां कोकिलों का रूपं रूप स्वरः स्वर है, नारीरूपं स्त्रियों का रूप पतिव्रतं पातिव्रत्य है, कुरूपाणां कुरूपों का रूपं रूप विद्या विद्या है (तथा) तपस्विनां तपस्वियों का रूपं रूप क्षमा क्षमा है।

किसका विष कहाँ रहता है ?

तक्षकस्य विषं दन्ते, मक्षिकाया विषं शिरे।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे, सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम्॥ ६६ ॥

—चाणक्यनीतिः

तक्षकस्य साँप के दन्ते दाँत में विषं विष होता है। मक्षिकायाः मक्खी के शिरे शिर में विषं विष होता है। वृश्चिकस्य बिच्छू के पुच्छे पूँछ में विषं विष होता है (परन्तु) दुर्जनः दुष्ट आदमी सर्वाङ्गे सम्पूर्ण अङ्ग में विषं विषमय होता है।

किसमें कौन बात नहीं होती ?

गृहासक्तस्य नो विद्या, न दया मांसभोजिनः।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं, स्त्रैणस्य न पवित्रता॥ ६७ ॥

—चाणक्यनीतिः

गृहासक्तस्य गृहकार्य में फँसे हुए व्यक्ति को विद्या नो विद्या नहीं आती। मांसभोजिनः मांस खानेवाले प्राणी को दया न दया नहीं आती। द्रव्य-लुब्धस्य द्रव्य के लिए लोभी पुरुष में सत्यं नो सचाई नहीं रहती (तथा)

स्त्रैणस्य स्त्रियों में अधिक प्रेम रखनेवाले व्यक्ति में पवित्रता न पवित्रता नहीं होती।

ये गई जवानी भी ला देते हैं ?

वर्षा नदीनाम् ऋतुराट् तरूणाम्, अर्थो नराणां पतिरङ्गनानाम्[1]।
न्यायप्रधानश्च[2] नृपः प्रजानां, नवं नवं यौवनमानयन्ति[3] ॥६८॥

—कथारत्नाकरः

वर्षा वर्षा नदीनाम् नदियों की, ऋतुराट् ऋतुराज वसन्त तरूणाम् वृक्षों की, अर्थः रुपया-पैसा नराणाम् मनुष्यों की, पतिः (परदेश से लौटा हुआ) पति अङ्गनानाम् अङ्गनाओं की च तथा न्यायप्रधानः न्यायकारी नृपः राजा प्रजानाम् प्रजाओं की गतं गतं गई—बीती यौवनम् जवानी को (पुनः) आनयन्ति ला देते हैं।

किसका क्या नष्ट हो जाता है ?

लुब्धस्य नश्यति यशः पिशुनस्य मैत्री।
नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य[4] धर्मः॥
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं।
राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य॥ ६९ ॥

—पञ्चतन्त्रम्

लुब्धस्य लोभी का यशः यश नश्यति नष्ट हो जाता है, पिशुनस्य चुगलखोर की मैत्री मित्रता (नष्ट हो जाती है), नष्टक्रियस्य दुराचारी का कुलं कुल (नष्ट हो जाता है), अर्थपरस्य केवल धन कमाने में लगे हुए आदमी का धर्मः धर्म (नष्ट हो जाता है), व्यसनिनः व्यसनी व्यक्ति का विद्याफलं विद्या पढ़ने का फल (नष्ट हो जाता है), कृपणस्य कृपण का सौख्यं सुख नष्ट हो जाता है (तथा) प्रमत्तसचिवस्य प्रमादी मन्त्री वाले नराधिपस्य राजा का राज्यं राज्य (नष्ट हो जाता है)।

सन्धि—१—पतिः + अङ्गनानाम्। २—न्यायप्रधानः + च। ३—यौवनम् आनयन्ति। ४—कुलम् + अर्थपरस्य।

ये गुण मनुष्य को स्वर्ग में पहुँचाते हैं

दानं दरिद्रस्य विभोश्च[1] शान्तिः, यूनां तपो ज्ञानवतां च मौनम् ।
इच्छानिवृत्तिश्च[2] सुखान्वितानां, दया च भूतेषु दिवं नयन्ति ॥७०॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार:

दरिद्रस्य दरिद्र का दान, विभो: सब कुछ करने में समर्थ पुरुष की शान्ति: शान्ति, यूनां युवकों की तप: तपस्या–संयमी जीवन, ज्ञानवतां ज्ञानियों का मौनं मौनधारण—वाक्संयम, सुखान्वितानां सुखी लोगों की इच्छानिवृत्तिः इच्छा-निवृत्ति—सन्तोष, च तथा भूतेषु प्राणियों पर दया दया (ये गुण मनुष्य को) दिवं स्वर्ग को नयन्ति ले जाते हैं ।

अर्थातुराणां न गुरुर्न[3] बन्धुः, कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा, क्षुधातुराणां न रुचिर्न वेला ॥७१॥
—चाणक्यनीति ८-६४

अर्थातुराणां धन कमाने के लिये आतुर लोगों का न गुरुः न (कोई) गुरु होता है न बन्धुः न कोई बन्धु, कामातुराणां काम से आतुर लोगों को न भयं न भय होता है न लज्जा न लाज, विद्यातुराणां विद्या के लिये आतुर लोगों को न सुखं न सुख अच्छा लगता है न निद्रा न नींद, (तथा) क्षुधातुराणां क्षुधा से पीड़ित लोगों के लिये न रुचिः न रुचि अपेक्षित होती है न वेला न समय ।

ये मूलाघाती कुठार हैं

सेवा सुखानां व्यसनं धनानां, याच्ञा गुरूणां कुनृपः प्रजानाम् ।
प्रणष्टशीलश्च[4] सुतः कुलानां, मूलावघातः कठिनः कुठारः ॥७२॥
—भोजप्रबन्ध १००

सन्धि—१—विभोः + च । २—इच्छानिवृत्तिः + च । ३—गुरु + न । ४—प्रनष्टः + शीलः + च ।

सेवा नौकरी **सुखानां** सुखों का, **व्यसनं** जुआ शराब आदि व्यसन **धनानां** धनों का, **याच्ञा** माँगना **गुरूणां** बड़े लोगों का, **कुनृपः** अयोग्य शासक **प्रजानां** प्रजा का **च** तथा **प्रणष्टशीलः** शीलविहीन **सुतः** पुत्र **कुलानां** कुलों का **मूलावघातः** मूल से ही नाश करनेवाला **कठिनः** कठिन **कुठार** कुठार है ।

शील मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ भूषण है

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता, शौर्यस्य वाक्संयमः
ज्ञानस्योपशमः[1] कुलस्य विनयो, वित्तस्य पात्रे व्ययः ।
अक्रोधस्तपसः[2] क्षमा बलवतां, धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि[3] सर्वकारणमिदं[4] शीलं परं भूषणम् ॥७३॥
—नीतिशतकम् ४१

सुजनता सज्जनता **ऐश्वर्यस्य** ऐश्वर्य का **विभूषणं** भूषण है, **वाक्संयमः** वाणी पर संयम रखना-कम बोलना **शौर्यस्य** शूरता का (भूषण है), **उपशमः** शान्ति **ज्ञानस्य** ज्ञान का भूषण है, **विनयः** विनय **कुलस्य** कुल का भूषण है, **पात्रे** सत्पात्र में तथा सत्कार्य में **व्ययः** व्यय करना **वित्तस्य** धन का भूषण है, **अक्रोधः** क्रोध न करना **तपसः** तपस्या का भूषण है, **क्षमा** क्षमा **बलवतां** बलवानों का भूषण है तथा **निर्व्याजता** निष्कपट व्यवहार **धर्मस्य** धर्म का भूषण है, (परन्तु) **इदं** यह **शीलं** शील (उपर्युक्त) **सर्वेषाम् अपि** सभी भूषणों का सर्वप्रधान कारण (तथा) **परं** सबसे उत्कृष्ट **भूषणं** भूषण है ।

सप्तमी विभक्ति

बन्धु कौन है ?

उत्सवे व्यसने चैव, दुर्भिक्षे शत्रुविग्रहे ।
राजद्वारे श्मशाने च, यस्तिष्ठति[5] स बान्धवः ॥७४॥
—चाणक्यशतकम् ।

सन्धि—१—ज्ञानस्य + उपशमः । २—अक्रोधः + तपसः । ३—सर्वेषाम् + अपि । ४—सर्व + कारणम् + इदम् । ५—यः + तिष्ठति ।

यः जो मनुष्य उत्सवे उत्सव में, व्यसने व्यसन में, चैव और दुर्भिक्षे अकाल में (तथा) शत्रुविग्रहे शत्रुओं के साथ लड़ाई में, राजद्वारे राज दरबार में च तथा श्मशाने श्मशान में तिष्ठति रहता है स वह बान्धवः भाई-बन्धु है।

शील सर्वत्र के लिये सहायक धन है

विदेशेषु धनं विद्या, व्यसनेषु धनं मतिः।
परलोके धनं धर्मः, शीलं सर्वत्र वै धनम् ॥७५॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

विदेशेषु विदेशों में विद्या विद्या धनं धन होता है, व्यसनेषु आपत्ति काल में मतिः बुद्धि धनं धन होता है। परलोके परलोक में धर्मः धर्म धनं धन होता है और शीलं शील सर्वत्र सब जगह के लिए धनं धन होता है।

प्रथमे नाऽर्जिता[1] विद्या, द्वितीये नाऽर्जितं[2] धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं, चतुर्थे किं करिष्यति ॥७६॥

—चाणक्यशतकम्

प्रथमे प्रथम अवस्था में विद्या विद्या न अर्जिता नहीं कमायी गयी, द्वितीये द्वितीय अवस्था में धनं धन न अर्जितं नहीं कमाया गया, तृतीये तृतीय अवस्था में पुण्यं पुण्य न अर्जितं नहीं कमाया गया, (तो फिर) चतुर्थे चतुर्थ अवस्था में—अर्थात् बुढ़ापे में किं क्या करिष्यति करेगा?

उत्तम वस्तुयें सब जगह नहीं होतीं

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ॥७७॥

—चाणक्यशतकम्

शैले शैले प्रत्येक पर्वत पर माणिक्यं न माणिक्य नहीं होता, गजे

सन्धि—१—न + अर्जिता २—न + अर्जितम्।

गजे प्रत्येक हाथी पर **मौक्तिकं न** मोती नहीं होता, **सर्वत्र** सब जगह **साधवः न** सज्जन पुरुष नहीं होते (तथा) **वने वने** प्रत्येक वन में **चन्दनं न** चन्दन नहीं होता।

कहाँ कहाँ लज्जा नहीं रखनी चाहिये ?

धन-धान्य-प्रयोगेषु, विद्या-संग्रहणे तथा।
आहारे-व्यवहारे च, त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्॥ ७८॥

—चाणक्यनीतिः

धन-धान्य-प्रयोगेषु रुपया पैसा तथा अन्न के देन लेन में तथा तथा **विद्या-संग्रहणे** विद्या के संग्रह में, **आहारे** भोजन में **च** और **व्यवहारे** व्यवहार में **त्यक्तलज्जः** लज्जा न रखने वाला मनुष्य **सुखी** सुखी **भवेत्** होता है।

यह पण्डित की परिभाषा है

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति स पण्डितः॥ ७९॥

—चाणक्यशतकम्

यः जो मनुष्य **परदारेषु** दूसरों की स्त्रियों में **मातृवत्** माता के समान, **परद्रव्येषु** दूसरों के धन में **लोष्ठवत्** ढेले के समान तथा **सर्वभूतेषु** सब प्राणियों में **आत्मवत्** अपनी आत्मा के समान **पश्यति** दृष्टि रखता है—व्यवहार रखता है **स** वह **पण्डितः** पण्डित, विद्वान् है।

पूर्वजन्म के पुण्य मनुष्य को संकट से बचाते हैं ?

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥८०॥

—नीतिशतकम् ९८

वने वन में, **रणे** युद्ध में, **शत्रुजलाग्निमध्ये** शत्रु, जल और आग के बीच में, **महार्णवे** महासमुद्र में (अथवा) **पर्वतमस्तके** पर्वत के शिखर पर,

सुप्तं सोये हुए को, प्रमत्तं असावधान को, वा अथवा विषमस्थितं विषम भूमि अथवा विषम अवस्था में वर्तमान (पुरुष) को पुराकृतानि पूर्व जन्म के किये हुए पुण्यानि पुण्य रक्षन्ति बचाते हैं—उनकी रक्षा करते हैं।

समझदार व्यक्ति सबसे अधिक प्रिय होता है

न भ्रातरि न च मातरि, न च नेतरि नापि पितरि न स्वसरि ।
न च दातरि न च गातरि, सा प्रीतिर्या च बोद्धरि नरि स्यात् ॥ ८१ ॥

—कथारत्नाकरः

या जो, प्रीतिः प्रेम बोद्धरि समझने वाले अर्थात् अच्छी समझ-बूझ रखने वाले, नरि मनुष्य में, स्यात् होता है, सा वह न भ्रातरि न भाई में, न मातरि न माता में, न नेतरि न नेता में, न पितरि अपि न पिता में भी, न स्वसरि न बहन में, न दातरि न दानी में, च तथा न गातरि न गाने वाले में होता है।

ये ही लोग वस्तुतः पुरुष हैं

सुधीः शास्त्रे बली युद्धे, वाग्मी दौत्ये क्षमी तपे ।
दानी वित्ते दृढः कृत्ये, वशी गेहे पुमान् पुमान् ॥८२॥

(जो पुरुष) शास्त्रे शास्त्र में सुधीः विद्वान् होता है, युद्धे युद्ध में बली बलवान् होता है, दौत्ये दूत का काम करने में वाग्मी सुन्दर वक्ता होता है, तपे तपस्या में क्षमी क्षमाशील होता है, वित्ते धन होने पर दानी दानी है, कृत्ये काम में दृढः अचल रहता है तथा गेहे घर में वशी जितेन्द्रिय होता है (वास्तव में वही) पुमान् पुरुष पुमान् पुरुष है।

इन पाँच बातों से पुरुष पुरुष कहलाता है

पात्रे त्यागी गुणे रागी, भोगी परजनैः सह ।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा, पञ्चाङ्गः पुरुषः स्मृतः ॥८३॥

—उपदेशतरङ्गिणी १, ६८.

पात्रे सत्पात्र में त्यागी दान करनेवाला, गुणे गुण में रागी अनुराग रखने-

वाला, **परजनैः सह** दूसरे लोगों के साथ **भोगी** धन का उपभोग करनेवाला, **शास्त्रे** शास्त्र में **बोद्धा** बोध रखनेवाला अर्थात् शास्त्र को समझनेवाला (तथा) **रणे** संग्राम में **योद्धा** लड़नेवाला, (इस प्रकार) **पञ्चाङ्गः** इन पाँच अङ्गों से—गुणों से युक्त पुरुष **पुरुषः** पुरुष **स्मृतः** कहा जाता है ।

किसकी कहाँ परीक्षा होती है ?

आपदि मित्रपरीक्षा, शूरपरीक्षा रणाङ्गणे भवति ।
विनये वंशपरीक्षा, स्त्रियः परीक्षा तु निर्धने पुंसि ॥८४॥

सुभाषित रत्नभाण्डागारः

आपदि आपत्ति के समय में **मित्रपरीक्षा** मित्र की परीक्षा (होती है), **रणाङ्गणे** युद्ध के मैदान में **शूरपरीक्षा** वीर की परीक्षा (होती है), **विनये** विनय में, चाल-चलन में **वंश-परीक्षा** कुल की परीक्षा (होती है) तथा **पुंसि** पुरुष के **निर्धने** गरीब हो जाने पर **स्त्रियः** स्त्री की **परीक्षा** परीक्षा होती है ।

मरने के बाद मनुष्य क्या लेकर जाता है ?

धनानि भूमौ पशवश्च[1] गोष्ठे, नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने ।
देहश्चितायां[2] परलोकमार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥८५॥

धनानि धन **भूमौ** जमीन पर (रह जाता है), **पशवः** पशु **गोष्ठे** गोशाला में (रह जाते हैं), **नारी** स्त्री **गृहद्वारि** घर के दरवाजे पर (रह जाती है), **जनाः** मनुष्य—भाई-बन्धु आदि **श्मशाने** श्मशान तक ही (रह जाते हैं) **च** और **देह** शरीर **चितायां** चिता पर ही (समाप्त हो जाता है) परन्तु **परलोकमार्गे** परलोक के रास्ते में **एकः** अकेला **जीवः** जीव ही **कर्मानुगः** अपने पाप पुण्य कर्मों को लेकर **गच्छति** जाता है ।

सन्धि—१—पशवः + च । २—देहः + चितायाम् ।

गृहस्थाश्रम के छ दुःख

कुले कलङ्कः कवले कदन्नता, सुतः कुबुद्धिर्भवने[1] दरिद्रता।
रुजः शरीरे कलहप्रिया प्रिया, गृहाश्रमे दुर्गतयः षडेताः[2] ॥८६॥

सुभाषितरत्नभाण्डागारः

कुले कुल में कलङ्कः कलंक, कवले भोजन में कदन्नता खराब अन्न, कुबुद्धिः मूर्ख पुत्रः पुत्र, भवने घर में दरिद्रता दरिद्रता, शरीरे शरीर में रुजः बीमारियाँ (तथा) कलहप्रिया झगड़ालू प्रिया स्त्री एते ये षट् छः गृहाश्रमे गृहस्थाश्रम में दुर्गतयः दुर्गतियाँ हैं, दोष हैं।

इन नव गुणों से युक्त मनुष्यों को नमस्कार है

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे, प्रीतिर्गुरौ[3] नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्[4] भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने[5], संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते[6] यत्र वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो[7] नरेभ्यो नमः ॥८७॥

—नीतिशतकम् ६२

सज्जनसंगमे सज्जन पुरुषों के समागम की वाञ्छा इच्छा, परगुणे दूसरों के गुण में प्रीतिः प्रेम, गुरौ गुरु में नम्रता नम्रता, विद्यायां विद्या में व्यसनं विशेष आसक्ति, स्वयोषिति अपनी स्त्री में रतिः अनुराग, लोकापवादात् लोकनिन्दा से भयं भय, शूलिनि शंकर में भक्तिः भक्ति, आत्मदमने अपने को वश में रखने की शक्तिः शक्ति, खलेषु दुर्जनों के संसर्गमुक्तिः संसर्ग से दूर रहना एते ये निर्मलगुणाः निर्मल गुण यत्र जिन लोगों में वसन्ति रहते हैं तेभ्यः उन नरेभ्यः मनुष्यों के लिये नमः नमस्कार है।

सन्धि—१ कुबुद्धिः+भवने। २—षट्+एताः। ३—प्रीतिः+गुरौ। ४—रतिः+लोकापवादात्। ५—शक्तिः+आत्मदमने। ६—खलेषु+एते। ७—निर्मलगुणाः+तेभ्यः।

सर्वनाम प्रकरणम्

सदा ध्यान में रखने योग्य बातें

कः कालः कानि मित्राणि, को देशः कौ व्ययागमौ[१] ।
कश्चाहं[२] का च मे शक्तिः, इति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः[३] ॥८८॥

कः कैसा कालः समय है, कानि कौन मित्राणि मित्र हैं, कः कैसा देशः देश है, कौ कितना व्ययाऽगमौ व्यय और आय है, च और अहं मैं कः कौन हूँ च तथा मे मेरी शक्तिः शक्ति का क्या है इति यह मुहुर्मुहुः बार बार चिन्त्यं सोचते रहना चाहिये ।

सभा में वृद्धों का होना आवश्यक

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः,
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति[४],
सत्यं न तत् यत् छलनाऽनुविद्धम्[५] ॥८९॥

सा वह सभा न सभा नहीं यत्र जिसमें वृद्धाः वृद्ध न सन्ति न हों, ते वे वृद्धाः न वृद्ध नहीं ये जो धर्म उचित बात न वदन्ति न बोलते हों, स वह धर्मः न धर्म नहीं यत्र जिसमें सत्यं सचाई न अस्ति न हो (तथा) तत् वह सत्यं न सचाई नहीं यत् जो छलनाऽनुविद्धम् छल-कपट से युक्त हो ।

सा भार्या या प्रियं ब्रूते, स पुत्रो यत्र निर्वृतिः ।
तन्मित्रं[६] यत्र विश्वासः, स देशो यत्र जीव्यते ॥९०॥

—सुभाषित रत्नभाण्डागारः

सा वही भार्या स्त्री है या जो प्रियं प्रिय ब्रूते बोलती हो, स वही पुत्रः पुत्र है यत्र जिसमें निर्वृतिः विश्राम मिले, तत् वही मित्रं मित्र है यत्र जिस पर विश्वासः विश्वास हो (तथा) स वही देशः देश है यत्र जहाँ जीव्यते जीविका चले ।

सन्धि—१—व्यय + आगमौ । २—कः + च + अहम् । ३—मुहुः + मुहुः । ४—सत्यम् + अस्ति । ५—छलेन + अनुविद्धम् । ६–तत् + मित्रम् ।

उस अद्भुत शक्ति को नमस्कार

केयं[1] कस्य कुतः केन, कस्मै किं प्रति कुत्र वा।
कथं कदेत्यनिर्णीता,[2] तां वन्दे शक्तिमद्भुताम्[3] ॥६१॥

—विश्वशक्तिपराक्रमः ३.

इयं यह का कौन है, कस्य किसकी है, कुतः कहाँ से, केन किसके द्वारा, कस्मै किसके लिये, किं प्रति किसके प्रति, कथं कैसे, कदा कब (उत्पन्न हुई है) इति इस प्रकार जो अनिर्णीता निश्चित रूप से न जानी जा सकी है तां उस अद्भुतां अद्भुत शक्तिम् शक्ति की वन्दे वन्दना करता हूँ।

समानता में ही सम्बन्ध

ययोरेव[4] समं वित्तं, ययोरेव[5] समं कुलम्।
तयोर्मैत्री[6] विवाहश्च[7], न तु पुष्ट-विपुष्टयोः ॥६२॥

—पञ्चतन्त्रम् १, २२५.

ययोः जिन लोगों का समं समान एव ही वित्तं धन होता है, ययोः जिन लोगों का समं समान एव ही कुलं कुल होता है तयोः उन्हीं लोगों में मैत्री मित्रता च तथा विवाहः विवाह करना (उचित होता है) न तु न कि पुष्ट-विपुष्टयोः सबल और दुर्बल में।

कुछ असम्भव बातें

अचला कमला कस्य, कस्य मित्रं महीपतिः।
शरीरं च स्थिरं कस्य, कस्य वश्या वराङ्गना ॥६३॥

सुभाषितरत्नभाण्डागारः

कस्य किसकी कमला लक्ष्मी अचला अचल (होती है), महीपतिः राजा कस्य किसका मित्रं मित्र होता है, कस्य किसका शरीरं शरीर स्थिरं स्थिर होता है च तथा वराङ्गना वेश्या कस्य किसके वश्या वश में होती है?

सन्धि—१–का + इयम्। २–कदा + इति + अनिर्णीता। ३–शक्तिम् + अद्भुताम्। ४–५—ययोः + एव। ६–तयोः + मैत्री। ७–विवाहः + च।

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं[१], न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः ।
स्वभावादेव[२] जायन्ते, मित्राणि रिपवस्तथा[३] ॥६४॥

हितोपदेश १,७३

न कश्चित् न कोई कस्यचित् किसीका मित्रं मित्र है, न कश्चित् न कोई कस्यचित् किसीका रिपुः शत्रु है । मित्राणि मित्र तथा तथा रिपवः शत्रु स्वभावात् स्वभाव के कारण एव ही जायन्ते उत्पन्न हुआ करते हैं ।

मित्र-मिलन का महत्त्व

यस्य मित्रेण संभाषा, यस्य मित्रेण संस्थितिः ।
मित्रेण सह यो भुङ्क्ते, ततो नास्तीह[४] पुण्यवान् ॥६५॥

मित्रेण मित्र के साथ यस्य जिसकी संभाषा बातचीत हो, मित्रेण मित्र के साथ यस्य जिसका संस्थितिः सहवास हो, मित्रेण सह मित्र के साथ यः जो भुङ्क्ते भोजन करता है ततः उससे (बढ़कर) इह इस संसार में (कोई) पुण्यवान् पुण्यवान् नास्ति नहीं है ।

जैसे के साथ तैसा व्यवहार

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः, तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया वारणीयः, साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥६६॥

—महाभारतम्

यः जो मनुष्यः मनुष्य यस्मिन् जिसके विषय में अर्थात् जिसके साथ यथा जैसा वर्तते व्यवहार करता है तस्मिन् उसके विषय में अर्थात् उसके साथ तथा वैसा ही वर्तितव्यं व्यवहार करना चाहिये स यह धर्मः धर्म (है) । मायाचारः कपटपूर्ण व्यवहार मायया कपट से ही वारणीयः रोकना चाहिये (तथा) साध्वाचारः साधुतापूर्ण व्यवहार साधुना साधुतापूर्ण व्यवहार से प्रत्युपेयः उत्तरित होना चाहिये ।

सन्धि—१—कस्यचित् + मित्रम् । २—स्वभावात् + एव । ३—रिपवः + तथा । ४—न + अस्ति + इह ।

विशेष्य विशेषण प्रकरणम्

किसका जीवन सफल है ?

वाणी रसवती यस्य, भार्या पुत्रवती सती।
लक्ष्मीर्दानवती[1] यस्य, सफलं तस्य जीवितम् ॥९७॥
—उपदेशतरङ्गिणी २, ८७.

यस्य जिस पुरुष की **वाणी** बोली **रसवती** रसभरी (होती है), **भार्या** स्त्री **पुत्रवती** पुत्रवाली (और) **सती** पतिव्रता (होती है) (तथा) **यस्य** जिसकी **लक्ष्मीः** सम्पत्ति **दानवती** दानयुक्त (होती है) **तस्य** उस पुरुष का **जीवितं** जीवन **सफलं** सफल (होता है)।

इन तीनों की अपूर्व शोभा होती है

शीलभारवती कान्ता, पुष्पभारवती लता।
अर्थभारवती वाणी, भजते कामपि[2] श्रियम् ॥९८॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

शीलभारवती शील के भार से झुकी हुई **कान्ता** स्त्री, **पुष्पभारवती** फूल के भार से लदी हुई **लता** लता (तथा) **अर्थभारवती** अर्थ के भार से संयुक्त **वाणी** वाणी (यह तीनों) **कामपि** किसी (अपूर्व) **श्रियं** शोभा को **भजते** धारण करती हैं।

ये अनुरक्त पुरुष के लक्षण हैं

मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः, कथाऽनुरागो मधुरा च वाणी।
स्नेहोऽधिकः[3] सम्भ्रमदर्शनं च, सदाऽनुरक्तस्य[4] जनस्य चिह्नम् ॥९९॥
—हितोपदेश १, ११३.

प्रसन्नं प्रसन्न **मुखं** मुख, **च** और **विमला** विमल **दृष्टिः** दृष्टि, **कथाऽनुरागः**

सन्धि—१–लक्ष्मीः + दानवती। २–काम् + अपि। ३–स्नेहः + अधिकः। ४–सदा + अनुरक्तस्य।

बातचीत करने में अनुराग च और मधुरा मधुर वाणी वाणी, अधिकः अधिक स्नेहः स्नेह च तथा सम्भ्रमदर्शनं आदर से देखना (यह) सदाऽनुरक्तस्य सदा अनुरक्त रहनेवाले जनस्य मनुष्य का चिह्नं चिह्न है ।

ये पाँच दुःख को जड़ से नष्ट कर देते हैं

वश्याः सुता वित्तकरी च विद्या, धर्म्या कथा सज्जन-सङ्गतिश्च ।
इष्टा च भार्या वशवर्तिनी च, दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च ॥१००॥
चाणक्यनीति ८, १७.

वश्याः वश में रहने वाले सुताः पुत्र, वित्तकरी धन देने वाली विद्या विद्या, धर्म्या धार्मिक कथा कथा, सज्जनसङ्गतिः सज्जनों की संगति, च तथा इष्टा प्रिय च और वशवर्तिनी वश में रहने वाली भार्या स्त्री (ये) पञ्च पाँच दुःखस्य दुःख का मूलोद्धरणानि मूल से विनाश करने के साधन हैं ।

ये पाँच पृथ्वी के आभूषण हैं

प्रभुर्विवेकी[1] धनवांश्च दाता, विद्वान् विरागी प्रमदा सुशीला ।
तुरङ्गमः शस्त्र-निपात-धीरो, भूमण्डलस्याऽभरणानि[2] पञ्च ॥१०१॥
—सुभाषितरत्नाकरः

विवेकी विवेकशील प्रभुः मालिक, धनवान् धनी दाता दान देने वाला, विरागी सांसारिक झंझटों से दूर रहने वाला विद्वान् विद्वान्, सुशीला सुन्दर शील-स्वभाव वाली प्रमदा स्त्री, शस्त्र-निपात-धीरः शस्त्रों के गिरने पर भी धीर रहनेवाला तुरङ्गमः घोड़ा (ये) पञ्च पाँच भूमण्डलस्य भूमण्डल के आभरणानि आभूषण हैं, शोभा हैं ।

कौन पैर पसार कर सुख से सोता है ?

स्थिरः सुहृद् भृत्यचयोऽनुकूलः,[3] स्वामी गुणज्ञः सुखितश्च देशः ।
पत्नी सती यस्य कुले न कन्या, प्रसार्य पादौ स सुखेन शेते ॥१०२॥
—चाणक्यनीति ८. ६७

सन्धि—१–प्रभुः + विवेकी । २–भूमण्डलस्य + आभरणानि । ३–भृत्यचयः + अनुकूलः ।

यस्य जिसका सुहृद् मित्र स्थिरः अटल हो, भृत्यचयः सेवक-समुदाय अनुकूलः अनुकूल हो, स्वामी मालिक गुणज्ञः गुणों का जानकार हो, देशः देश सुखितः सुखी हो, पत्नी स्त्री सती पतिव्रता हो (तथा) कुले कुल में कन्या न कन्या न हो (तो) स वह मनुष्य पादौ दोनों पैर प्रसार्य पसार कर सुखेन सुख से शेते सोता है।

कौन कौन वस्तुयें समूल नष्ट हो जाती हैं ?

पिपीलिकाऽर्जितं[1] धान्यं, मक्षिका-संचितं मधु।
लुब्धेन संचितं द्रव्यं, समूलं च विनश्यति ॥१०३॥

पिपीलिकार्जितं चीटियों द्वारा एकत्रित किया हुआ धान्यं अन्न, मक्षिका-संचितं मधुमक्खियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ मधु मधु (तथा) लुब्धेन लोभी मनुष्य द्वारा संचितं एकत्र किया हुआ द्रव्यं द्रव्य समूलं मूल के साथ विनश्यति नष्ट हो जाता है।

किसका विनाश कैसे होता है ?

कलहान्तानि हर्म्याणि, कुवाक्यान्तं च सौहृदम्।
कुराजान्तानि राष्ट्राणि, कुकर्मान्तं यशो नृणाम् ॥१०४॥

—पञ्चतन्त्रम् ५. ६६

हर्म्याणि घर कलहान्तानि कलह से विनष्ट हो जाते हैं। सौहृदं मित्रता कुवाक्यान्तं दुर्वचन बोलने से विनष्ट हो जाती है। राष्ट्राणि राज्य कुराजान्तानि दुष्ट शासक के कारण विनष्ट हो जाते हैं (तथा) नृणां मनुष्यों का यशः यश कुकर्मान्तं कुकर्म करने से विनष्ट हो जाता है।

धन की महिमा

यस्यास्ति[2] वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति[3] ॥१०५॥

—नीतिशतकम् ४१

सन्धि—१—पिपीलिका + अर्जितं। २—यस्य + अस्ति। ३—काञ्चनम् + आश्रयन्ति।

यस्य जिसके पास **वित्तं** धन **अस्ति** है **स** वह **नरः** मनुष्य **कुलीनः** कुलीन है, **स पण्डितः** वह चतुर है, **स श्रुतवान्** वह विद्वान् है (और) **गुणज्ञः** गुणों का जानकार है, **स एव** वही **वक्ता** बोलनेवाला है, और **स** वही **दर्शनीयः** दर्शन करने योग्य है। (क्योंकि) **सर्वे** समस्त **गुणाः** गुण **काञ्चनं** धन का **आश्रयन्ति** आश्रय लेते हैं।

कौन सदा नीरोग रहता है ?

नरो हिताहार-विहार-सेवी, समीक्ष्य-कारी विषयेष्वसक्तः[1]।
दाता समः सत्यपरः क्षमावान्, आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः[2] ॥१०६॥
—चरकसंहिता, शारी० २

हिताहार-विहार-सेवी हितकर आहार विहार का सेवन करने वाला, **समीक्ष्यकारी** सोचविचार कर काम करने वाला, **विषयेषु** विषयों में **असक्तः** आसक्त न रहने वाला, **दाता** दान देने वाला, **समः** सब पर समदृष्टि रखने वाला, **सत्यपरः** सत्य बोलने वाला, **क्षमावान्** सहनशील **च** तथा **आप्तोपसेवी** आप्त पुरुषों की सेवा-शुश्रूषा एवं साथ में रहने वाला, **नरः** मनुष्य **अरोगः** रोगहीन **भवति** होता है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति को कभी रोग नहीं होता।

कौन अच्छा और कौन बुरा है ?

मूर्खो वरं दुश्चरितो न विद्वान्, वरं गृहस्थो न यतिः कुशीलः।
निःस्वो वरं नो धनवान् अदाता, क्लीबो वरं स्त्रीकृतभुग् न शक्तः ॥१०७॥
—पद्मानन्द महाकाव्यम् २. १४७

मूर्खः मूर्ख आदमी **वरं** अच्छा (परन्तु) **दुश्चरितः** दुश्चरित्र **विद्वान्** विद्वान् **न** अच्छा नहीं। **गृहस्थः** गृहस्थ **वरं** अच्छा (परन्तु) **कुशीलः** दुराचारी **यतिः** संन्यासी **न** अच्छा नहीं। **निःस्वः** गरीब **वरं** अच्छा परन्तु **अदाता** दानहीन **धनवान्** धनवान् **न** अच्छा नहीं। **क्लीबः** नपुंसक **वरं** अच्छा (परन्तु) **स्त्रीकृत-भुग्** स्त्री के सहारे जीने वाला **शक्तः** समर्थ पुरुष **न** अच्छा नहीं।

सन्धि १—विषयेषु + असक्तः। २—भवति + अरोगः।

ये चारों मस्तक के शूल हैं

अविधेयो भृत्यजनः, शठानि मित्राण्यदायकः[1]स्वामी ।
अविनयवती च भार्या, मस्तक-शूलानि चत्वारि ॥१०८॥

—पञ्चतन्त्रम्

अविधेयः आज्ञानुसार काम न करने वाला भृत्यजनः नौकर, शठानि कपटी, दुष्ट मित्राणि मित्र, अदायकः समय पर वेतन या सहायता न देने वाला स्वामी मालिक च तथा अविनयवती विनम्र न रहने वाली, उद्दण्ड भार्या स्त्री (ये) चत्वारि चारों मस्तकशूलानि मस्तक के लिये शूल होते हैं ।

ये छः सर्वदा दुखी रहते हैं

ईर्ष्यी घृणी न सन्तुष्टः, क्रोधनो नित्यशंकितः ।
परभाग्योपजीवी[2] च, षडेते[3] नित्यदुःखिताः ॥१०९॥

—विदुरनीति ३३, ९५

ईर्ष्यी ईर्ष्या रखने वाला, घृणी घृणा करने वाला, न सन्तुष्टः सन्तुष्ट न रहने वाला क्रोधनः क्रोधी स्वभाव वाला, नित्यशंकितः बराबर सन्देह में पड़ा रहने वाला च तथा परभाग्योपजीवी दूसरे के भाग्य के भरोसे जीने वाला एते ये षट् छः आदमी नित्यदुःखिताः सदा दुखी रहते हैं ।

इससे बढ़कर हँसने लायक बात क्या होगी ?

विद्वान् संसदि पाक्षिकः परवशो, मानी दरिद्रो गृही
द्रव्याढ्यः कृपणो यतिर्वसुमना[4], वृद्धो विवाहोद्यतः ।
राजा दुस्सचिवप्रियः सुकुलजो, मूर्खः पुमान् स्त्रीजितो
वेदान्ती हतसत्क्रियः किमपरं[5], हास्यास्पदं भूतले ॥११०॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

संसदि सभा में पाक्षिकः पक्षपात करने वाला विद्वान् विद्वान्, परवशः

सन्धि—१–मित्राणि + अदायकः । २–परभाग्य + उपजीवी । ३–षट् + एते । ४–यतिः + वसुमना । ५–किम् + अपरम् ।

दूसरे के अधीन रहने वाला मानी मानी, दरिद्रः दरिद्र गृही गृहस्थ, कृपणः कृपण धनाढ्यः धनाढ्य, वसुमनाः धन की लालच रखने वाला यतिः साधु-संन्यासी, विवाहोद्यतः विवाह के लिये तैयार वृद्धः वृद्ध, दुस्सचिवप्रियः दुष्ट मन्त्रियों का प्रेमी राजा राजा, सुकुलजः अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ मूर्खः मूर्ख, स्त्रीजितः स्त्री के वशीभूत रहने वाला पुमान् पुरुष (तथा) हतसत्क्रियः सत्कर्म से रहित वेदान्ती वेदान्ती (इनसे) अपरं दूसरी भूतले संसार में हास्यास्पदं हँसने लायक बात किं क्या हो सकती है ?

जो इन्हें छोड़ दें वे बुद्धिमान हैं

वैद्यं पानरतं नटं कुपठितं, स्वाध्यायहीनं द्विजं
योधं कापुरुषं हयं गतरयं, मूर्खं परिव्राजकम् ।
राजानं च कुमन्त्रिभिः परिवृतं, देशं च सोपद्रवं
भार्यां यौवनगर्वितां पररतां, मुञ्चन्ति ते पण्डिताः ॥१११॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

(जो) पानरतं मदिरा पीने वाले वैद्यं वैद्य को, कुपठितं कम पढ़े-लिखे नटं नट को, स्वाध्यायहीनं वेदाध्ययन से हीन द्विजं ब्राह्मण को, कापुरुषं कायर योधं योद्धा को, गतरयं तेज न चलने वाले हयं घोड़े को, मूर्खं मूर्ख परिव्राजकं सन्यासी को, कुमन्त्रिभिः दुष्ट मन्त्रियों से परिवृतं घिरे हुए राजानं राजा को, सोपद्रवं उपद्रव से युक्त देशं देश को च तथा पररतां दूसरे पुरुष में आसक्त यौवन-गर्वितां युवती भार्यां स्त्री को मुञ्चन्ति छोड़ देते हैं ते वे लोग पण्डिताः विद्वान् हैं—चतुर हैं ।

ऐसे गृहस्थाश्रम को धन्यवाद है

सानन्दं सदनं, सुताश्च[१] सुधियः, कान्ता मनोहारिणी,
सन्मित्रं, सुधनं, स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः[२] सेवकाः ।

सन्धि—१—सुताः + च । २—रतिः + च + आज्ञापराः ।

आतिथ्यं, शिवपूजनं, प्रतिदिनं, मृष्टान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते[1] हि सततं, धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥११२॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

सानन्दं आनन्द से परिपूर्ण सदनं घर, सुधियः बुद्धिमान् सुताः पुत्र, मनोहारिणी सुन्दरी कान्ता स्त्री, सन्मित्रं अच्छा मित्र, सुधनं अच्छा धन, स्वयोषिति अपनी स्त्री में रतिः प्रेम, आज्ञापराः आज्ञा मानने वाले सेवकाः सेवक, आतिथ्यं अतिथिसत्कार, शिवपूजनं शिव जी की पूजा, गृहे घर में प्रतिदिनं प्रतिदिन मृष्टान्नपानं मधुर भोजन और जलपान (तथा) सततं सर्वदा साधोः साधु पुरुषों का सङ्गं सङ्ग उपासते करते हैं (इन कारणों से) गृहस्थाश्रमः धन्यः धन्य है—सबसे श्रेष्ठ आश्रम है ।

ऐसे गृहस्थाश्रम को धिक्कार है

क्रोशन्तः शिशवः, सवारि सदनं, पङ्कावृतं चाङ्गणं[2]
शय्या दंशवती, च रूक्षमशनं,[3]धूमेन पूर्णं गृहम् ।
भार्या निष्ठुरभाषिणी, प्रभुरपि,[4] क्रोधेन पूर्णः सदा
स्नानं शीतलवारिणा हि सततं, धिग् धिग् गृहस्थाश्रमम् ॥११३॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

क्रोशन्तः चिल्लाते हुए शिशवः लड़के, सवारि पानी लगा हुआ सदनं मकान, पङ्कावृतं कीचड़ से भरा हुआ अङ्गणं आँगन, दंशवती खटमलों से भरी हुई शय्या शय्या, रूक्षं रूखा अशनं भोजन, धूमेन धूएँ से पूर्णं भरा हुआ गृहं घर, निष्ठुरभाषिणी निष्ठुर बोलने वाली भार्या स्त्री, प्रभुः अपि मालिक भी सदा क्रोधेन क्रोध से पूर्णः पूर्ण, (तथा) सततं सर्वदा शीतलवारिणा ठण्डे जल से स्नानं स्नान (यदि ऐसी हालत हो तो ऐसे) गृहस्थाश्रमं गृहस्थाश्रम को धिक् धिक् धिक्कार है, धिक्कार है ।

सन्धि—१—सङ्गम् + उपासते । २—च + अङ्गणम् । ३—रूक्षम् + अशनम् । ४—प्रभुः + अपि ।

स्वार्थ ही स्नेह का प्रधान कारण है

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः, शुष्कं सरः सारसाः,
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका, भ्रष्टं नृपं मंत्रिणः।
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा, दग्धं वनान्तं मृगाः,
सर्वः कार्यवशात् जनोऽभिरमते, तत् कस्य को वल्लभः ॥११४॥

—चाणक्यनीति, २६.

क्षीणफलं फलहीन वृक्षं वृक्ष को विहगाः पक्षी त्यजन्ति छोड़ देते हैं, शुष्कं सूखे हुए सरः सरोवर को सारसाः सारस पक्षी (छोड़ देते हैं), निर्द्रव्यं द्रव्यहीन पुरुषं पुरुष को गणिकाः वेश्यायें त्यजन्ति (छोड़ देती हैं), भ्रष्टं विचार-हीन नृपं राजा को मंत्रिणः मंत्री (छोड़ देते हैं), पर्युषितं बासी पुष्पं फूल को मधुपाः भ्रमर त्यजन्ति छोड़ देते हैं तथा दग्धं जले हुए वनान्तं वनभाग को मृगाः मृग (छोड़ देते हैं) तत् इसलिये सर्वः प्रत्येक जनः प्राणी कार्य-वशात् अपने मतलब से ही (किसीसे) अभिरमते प्रेम करता है। कः कौन कस्य किसका वल्लभः प्रिय है ?

मधुरता की परिभाषा

दधि मधुरं मधु मधुरं, द्राक्षा मधुरा सितापि[1] मधुरैव[2]।
तस्य तदेव[3] हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलगति ॥११५॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

दधि दही मधुरं मीठा (होता है), मधु मधु मधुरं मीठा (होता है), द्राक्षा दाख मधुरं मीठा (होता है) और सिता चीनी अपि भी मधुरा मीठी एव ही (होती है) (परन्तु वास्तव में) तस्य उसके लिये तदेव वही वस्तु मधुरं मीठी होती है यस्य जिसका यत्र जिसमें मनः मन संलगति लगता है।

सन्धि—१—सिता + अपि। २—मधुरा + एव। ३—तत् + एव।

तिङन्त प्रकरणम्

वर्तमानकाल (लट् लकार)

वे लोग ही संसार में उत्तम पुरुष हैं

यौवनेऽपि प्रशांता ये, ये च हृष्यन्ति याचिताः ।
वर्णिता ये च लज्जन्ति, ते नरा जगदुत्तमाः ॥११६॥

—उपदेशतरङ्गिणी १

ये जो **यौवने अपि** जवानी में भी **प्रशांताः** शान्त होते हैं, ये जो **याचिताः** याचना करने पर **हृष्यन्ति** प्रसन्न होते हैं च तथा ये जो **वर्णिताः** वर्णन करने पर **लज्जन्ति** लज्जित होते हैं **ते** वे **नराः** मनुष्य **जगदुत्तमाः** जगत में उत्तम (माने जाते हैं)।

सज्जन पुरुष की चार विशेषतायें

सुजनः न कुप्यति एव, अथ कुप्यति अमंगलं न चिन्तयति ।
अथ चिन्तयति न जल्पति, अथ जल्पति लज्जावान् भवति ॥११७॥

—वज्जालग्गम् ३४

सुजनः सज्जन पुरुष **न कुप्यति** एव कोप ही नहीं करता है, **अथ** यदि **कुप्यति** कोप करता है (तो भी) **अमंगलं** अनिष्ट करने की बात **न चिन्तयति** नहीं सोचता है, **अथ** यदि **अमंगलं** अमंगल भी **चिन्तयति** सोचता है (तो उसे) **न जल्पति** कहता नहीं, **अथ** अगर **जल्पति** कहता है (तो) **लज्जावान् भवति** लज्जित होता है।

ज्ञान की महिमा

तमो धुनीते कुरुते प्रकाशं, शमं विधत्ते विनिहन्ति कोपम् ।
तनोति धर्मं विधुनोति पापं, ज्ञानं न किं-किं कुरुते नराणाम् ॥११८॥

—सुभाषितरत्नसन्दोहः १८६

ज्ञान **तमः** अन्धकार को **धुनीते** दूर करता है, **प्रकाशं** प्रकाश को **कुरुते**

फैलाता है, शमं शान्ति को विधत्ते देता है, कोपं कोप को विनिहन्ति नष्ट कर देता है, धर्मं धर्म को तनोति बढ़ाता है, तथा पापं पाप को विधुनोति नष्ट करता है (इस प्रकार) ज्ञानं ज्ञान नराणाम् मनुष्यों का किं किं क्या क्या (लाभ) न कुरुते नहीं करता है ?

किसकी बुद्धि बढ़ती है ?

यः पठति लिखति पश्यति, परिपृच्छति पण्डितानुपाश्रयति[१] ।
तस्य दिवाकर-किरणैः, नलिनीदलमिव[२] विकाश्यते बुद्धिः ॥११६॥

यः जो मनुष्य पठति पढ़ता है, लिखति लिखता है, पश्यति, (ग्रन्थों का) अवलोकन करता है, परिपृच्छति पूछता है (तथा) पण्डितान् विद्वानों की उपाश्रयति सेवा एवं सम्पर्क में रहता है तस्य उसकी बुद्धिः बुद्धि दिवाकर-किरणैः सूर्य की किरणों से नलिनीदलं कमलिनी के किसलय के समान बराबर विकाश्यते विकसित होती रहती है ।

पण्डितजन साहस में कोई काम नहीं करते

न पण्डिताः साहसिका भवन्ति, श्रुत्वापि[३] ते संतुलयन्ति तत्त्वम् ।
तत्त्वं समादाय समाचरन्ति, स्वार्थं प्रकुर्वन्ति परस्य चार्थम्[४] ॥१२०॥
दशरूपकम् ४

पण्डिताः विद्वान पुरुष साहसिकाः बिना सोचे-विचारे तुरन्त कोई काम कर देने वाले न भवन्ति नहीं होते । ते वे श्रुत्वा अपि (किसी बात को) सुन कर भी तत्त्वम् उसकी यथार्थता को संतुलयन्ति तौलते हैं—तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हैं । तत्त्वं (किसी भी काम के) तत्व को समादाय लेकर, समझ कर समाचरन्ति (उसके अनुसार) काम करते हैं । स्वार्थं अपने स्वार्थ को प्रकुर्वन्ति सिद्ध करते हैं च तथा परस्य दूसरे के भी अर्थं स्वार्थ को (सिद्ध करते हैं) ।

सन्धि—१—पण्डितान् + उपाश्रयति । २—नलिनीदलम् + इव । ३—श्रुत्वा + अपि । ४—च + अर्थम् ।

सज्जनों की विभूति

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव[1] नाऽम्भः[2], स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नाऽदन्ति[3] सस्यं खलु वारिवाहाः, परोपकाराय सतां विभूतयः ॥१२१॥

नद्यः नदियाँ स्वयमेव अपने ही आप अम्भः पानी न पिबन्ति नहीं पीती हैं। वृक्षाः वृक्ष स्वयं अपने ही फलानि फल न खादन्ति नहीं खाते हैं। वारिवाहाः बादल (स्वयं ही) सस्यं अन्न न अदन्ति नहीं खाते हैं। सतां सज्जन पुरुषों की विभूतयः विभूतियाँ, धन-सम्पत्ति परोपकाराय दूसरों के उपकार के लिये होती हैं।

विदेशभ्रमण तथा विद्वानों की सेवा का महत्त्व

यो न भ्रमति देशेषु, न च संसेवते बुधान्।
तस्य संकुचिता बुद्धिः, घृतबिन्दुरिवाऽम्भसि[4] ॥१२२॥

—उद्भटसागर ६०.

यः जो देशेषु भिन्न-भिन्न देशों में न भ्रमति भ्रमण नहीं करता है च तथा न न बुधान् विद्वानों की संसेवते सेवा करता है—सङ्गति करता है तस्य उसकी बुद्धिः बुद्धि अम्भसि पानी में घृतबिन्दुः इव घी के बिन्दु के समान संकुचिता सङ्कुचित हो जाती है।

द्रव्य की यह महिमा ?

अध्यापयन्ति शास्त्राणि, तृणीकुर्वन्ति पण्डितान्।
विस्मारयन्ति जातिं स्वां, वराटाः पञ्चषाः करे ॥१२३॥

—सुभाषितरत्नाकरः

करे हाथ में (रखी हुई) पञ्चषाः पाँच-छ वराटाः कौड़ियाँ शास्त्राणि शास्त्रों को अध्यापयन्ति पढ़ाती हैं, पण्डितान् पण्डितों को तृणीकुर्वन्ति

सन्धि—१—स्वयम् + एव। २—न + अम्भः। ३—न + अदन्ति। ४—घृतबिन्दुः + इव + अम्भसि।

तृण के समान तुच्छ समझती हैं (तथा) स्वां अपनी जातिं जाति को विस्मार यन्ति विस्मृत करा देती हैं—भुलवा देती हैं ।

मच्छड़ और खल की समानता

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं,
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः,
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥१२४॥
—हितोपदेश १, ८२.

प्राक् पहले पादयोः पैरों पर पतति गिरता है, (अनन्तर) पृष्ठमांसं पीठ का मांस खादति खाता है, (फिर) कर्णे कान में शनैः धीरे-धीरे किमपि कुछ विचित्रं विचित्र कलं रौति ध्वनि करता है, (तत्पश्चात्) छिद्रं छेद निरूप्य देख कर (उसमें) अशङ्कः निःशङ्क हो सहसा सहसा प्रविशति घुस जाता है, (इस प्रकार) मशकः मच्छड़ खलस्य खल का सर्वं समस्त चरितं आचरण करोति करता है ।

प्रेम के छ लक्षण

ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्यमाख्याति[1] पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव[2], षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥१२५॥
—पञ्चतन्त्रम् ४,१०.

ददाति देता है, प्रतिगृह्णाति लेता है, गुह्यं गुप्त बातों को आख्याति कहता है, पृच्छति पूछता है, भुङ्क्ते खाता है चैव और भोजयते खिलाता है (यह) षड्विधं छ प्रकार का प्रीतिलक्षणं प्रेम का लक्षण है ।

सन्धि—१–गुह्यम् + आख्याति । २–च + एव ।

दुर्जन और सज्जन का भेद

अमृतं किरति हिमांशुः, विषमेव[1] फणी समुद्गिरति ।
गुणमेव[2] वक्ति साधुः, दोषमसाधुः[3] प्रकाशयति ।।१२६।।

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

हिमांशुः चन्द्रमा अमृतं अमृत किरति बरसाता है (और) फणी साँप विषं विष को एव ही समुद्गिरति उगलता है । (इसी प्रकार) साधुः सज्जन पुरुष गुणं गुण को एव ही वक्ति बखानता है और असाधुः दुर्जन पुरुष दोषं दोष को ही प्रकाशयति प्रकाशित करता है ।

आत्मा का स्वरूप

नैनं[4] छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं[5] दहति पावकः ।
न चैनं[6] क्लेदयन्त्यापो[7], नशोषयति मारुतः ।।१२७।।

—गीता २-३

एनं इस (आत्मा) को शस्त्राणि शस्त्र न छिन्दन्ति नहीं काटते हैं, एनं इसको पावकः आग न दहति नहीं जलाता है, च और न एनं न इसको आपः जल क्लेदयन्ति भिंगाते हैं (और) न मारुतः न वायु शोषयति सुखाता है ।

मूर्ख का लक्षण

अनाहूतः प्रविशति, अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति, मूढचेता नराधमः ।।१२८।।

—विदुरनीति ३३-३६

(जो) अनाहूतः बिना बुलाये प्रविशति आता है अपृष्टः बिना पूछे बहु बहुत भाषते बोलता है (तथा) अविश्वस्ते विश्वास न करने योग्य

सन्धि—१-विषम् + एव, २-गुणम् + एव, ३-दोषम् + असाधुः ।
४-५-न + एनम् , ६-च + एनम् , ७—क्लेदयन्ति + आपः ।

मनुष्य में **विश्वसिति** विश्वास करता है (वह) **नराधमः** अधम मनुष्य **मूढचेताः** मूर्ख है।

पेट के लिये मनुष्य क्या नहीं करता ?

कर्षति वपति लुनीते, दीव्यति सीव्यति पुनाति वयते च।
विदधाति किं न कृत्यं, जठराऽनल-शान्तये तनुमान् ॥१२६॥
—सुभाषितरत्नसन्दोहः

तनुमान् मनुष्य **जठरानल-शान्तये** पेट की आग बुझाने के लिये **कर्षति** जोतता है, **वपति** बोता है, **लुनीते** काटता है, **दीव्यति** जूआ खेलता है, **सीव्यति** सीता है, **पुनाति** सफाई करता है, **वयते** बीनता है **किं** क्या **कृत्यं** काम **न विदधाति** नहीं करता है ?

दुर्जन और सज्जन का भेद

शरदि न वर्षति गर्जति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः।
नीचो वदति न कुरुते, न वदति सुजनः करोत्येव[1] ॥१३०॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

मेघः बादल **शरदि** शरद् ऋतु में **गर्जति** गरजता है परन्तु **वर्षति न** बरसता नहीं है और **वर्षासु** वर्षा ऋतु में **निःस्वनः** गरजता नहीं परन्तु **वर्षति** बरसता ही है। (इसी प्रकार) **नीचः** नीच मनुष्य **वदति** कहता है (पर) **कुरुते न** करता नहीं है (और) **सुजनः** सज्जन पुरुष **वदति न** कहता नहीं है (पर) **करोति एव** करता ही है।

मद्य पीने का परिणाम

हसति नृत्यति गायति वल्गति, भ्रमति धावति मूर्च्छति शोचते।
पतति रोदिति जल्पति गद्गदं, धमति धाम्यति मद्य-मदातुरः ॥१३१॥
—सुभाषितरत्नसन्दोहः

सन्धि—१—करोति + एव।

मद्य-मदातुरः मदिरा के मद से आकुल मनुष्य **हसति** हँसता है, **नृत्यति** नाचता है, **गायति** गाता है, **वल्गति** कूदता है, **भ्रमति** भटकता है, **धावति** दौड़ता है, **मूर्च्छति** मूर्च्छित होता है, **शोचते** सोचता है, **पतति** गिरता है, **रोदिति** रोता है, **गद्गदं** अंड बंड **जल्पति** बकता है, **धमति** कुछ बोला करता है तथा **धाम्यति** नुकसान पहुँचता है।

सज्जनों की वाणी कभी बदलती नहीं

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे,
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां,
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ॥१३२॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

भानुः सूर्य **यदि** यदि **पश्चिमे** पश्चिम **दिग्विभागे** दिशा में **उदयति** उदय ले, **मेरुः** मेरु पर्वत **यदि** यदि **प्रचलति** हिल जाय, **वह्निः** आग **यदि** यदि **शीततां** शीतलता को **याति** प्राप्त हो जाय तथा **यदि** यदि **पद्मं** कमल **पर्वताग्रे** पर्वत के शिखर पर **शिलायां** पत्थर पर **विकसति** खिल जाय (तथापि) **सज्जनानां** सज्जनों का **भाषितं** वचन **पुनरुक्तं** पुनरुक्त **न भवति** नहीं होता।

सत्संग का महत्त्व

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति[1]।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥१३३॥

—नीतिशतकम् २३

धियः बुद्धि की **जाड्यं** जड़ता को **हरति** हटाती है, **वाचि** वाणी में **सत्यं**

सन्धि—१—पापम् + अपाकरोति।

सत्य का **सिञ्चति** सिंचन करती है, **मानोन्नतिं** मान और उन्नति को **दिशति** देती है, **पापम्** पाप को **अपाकरोति** दूर करती है, **चेतः** चित्त को **प्रसादयति** निर्मल बनाती है (तथा) **दिक्षु** सब दिशाओं में **कीर्तिं** यश को **तनोति** फैलाती है। **कथय** कहिये तो, **सत्संगतिः** सज्जन पुरुषों की संगति **पुंसां** पुरुषों का **किं** क्या (लाभ) **न करोति** नहीं करती।

तरङ्गी लोगों का कुछ ठिकाना नहीं

छायां प्रकुर्वन्ति नमन्ति पुष्पैः,
फलानि यच्छन्ति तटद्रुमा ये।
उन्मूल्य तानेव[1] नदी प्रयाति,
तरङ्गिणां क्व प्रतिपन्नमस्ति[2] ॥१३४॥

—कथारत्नाकर

ये जो **तटद्रुमाः** किनारे के वृक्ष **छायां** छाया **प्रकुर्वन्ति** करते हैं, **पुष्पैः** फूलों से **नमन्ति** प्रणाम करते हैं, तथा **फलानि** फल **यच्छन्ति** देते हैं (पर) **तान्** उन वृक्षों को **एव** ही **उन्मूल्य** उखाड़ कर **नदी** नदी **प्रयाति** बड़े वेग से बहा करती है। (यह ठीक ही है, क्योंकि) **तरङ्गिणां** तरङ्गी लोगों को **प्रतिपन्नं** उचित अनुचित का विचार **क्व अस्ति** कहाँ रहता है?

शराबियों की हालत

अयुक्तं बहु भाषन्ते, यत्र कुत्रापि[3] शेरते।
नग्ना विक्षिप्य गात्राणि, बालका इव मद्यपाः ॥१३५॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

मद्यपाः मद्य पीने वाले लोग **बालकाः** बालकों के **इव** समान **बहु** बहुत **अयुक्तं** बे मतलब की बातें **भाषन्ते** बोलते हैं तथा **नग्नाः** नंगा होकर (एवं) **गात्राणि** अङ्गों को **विक्षिप्य** इधर-उधर फेंक कर **यत्रकुत्रापि** जहाँ कहीं भी **शेरते** सो रहते हैं।

सन्धि—१–तान् + एव २–प्रतिपन्नम् + अस्ति। ३—कुत्र + अपि।

नींद में मनुष्य कुछ नहीं जानता

न पश्यति न चाघ्राति[1], न शृणोति न भाषते ।
न च स्पर्शरसौ वेत्ति, निद्रावशगतः पुमान् ॥१३६॥

—शांतिपर्व १८७-१७

निद्रा-वश-गतः निद्रा का वशीभूत पुमान् पुरुष न पश्यति न देखता है, न आघ्राति न सूँघता है, न शृणोति न सुनता है, न भाषते न बोलता है, च और न स्पर्श-रसौ न स्पर्श और रस को वेत्ति समझता है ।

अभागे मनुष्य का काम

अमित्रं कुरुते मित्रं, मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।
शुभं वेत्त्यशुभं[2] पापं, भद्रं दैवहतो नरः ॥१३७॥

—पञ्चतन्त्रम् ३, २१६

दैवहतः हतभाग्य नरः मनुष्य अमित्रं शत्रु को मित्रं मित्र कुरुते बनाता है—मानता है, मित्रं मित्र से द्वेष्टि द्वेष करता है च तथा हिनस्ति हिंसा करता है, शुभं शुभ को अशुभं अशुभ वेत्ति समझता है (तथा) पापं पाप को, अशुभ को भद्रं अच्छा—शुभ (समझता है)।

परदेश से घर जाने वाले पुरुष की अवस्था

गायति विहसति नृत्यति, हृदयेन धृतां प्रियां विचिन्तयति ।
सम-विषमं च न पश्यति, गृह-गमन-समुत्सुकः पुरुषः ॥१३८॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

गृह-गमन-समुत्सुकः घर जाने के लिये उत्कण्ठित पुरुषः मनुष्य गायति कभी गाता है, कभी विहसति हँसता है, कभी नृत्यति नाचता है, कभी हृदयेन हृदय में धृतां विराजमान प्रियां प्रियतमा को विचिन्तयति याद करता है च तथा सम-विषमं ऊँची-नीची जमीन को भी न पश्यति नहीं देखता है ।

सन्धि—१—च + आघ्राति । २—वेत्ति + अशुभम् ।

जीवों की उत्पत्ति और विनाश

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति, प्रस्फुरन्ति पतन्ति च ।
तरंगा इव तोयानाम्, इमाः[1] प्रतिदिनं प्रजाः ॥१३९॥

—योगवाशिष्ठम् उत्पत्ति० ८६, ४६

तोयानाम् पानी के तरंगाः तरंग के इव समानइमाः ये प्रजाः लोग प्रतिदिनं प्रतिदिन उन्मज्जन्ति उतराते हैं, निमज्जन्ति डूबते हैं, प्रस्फुरन्ति स्फुरित होते हैं च और पतन्ति गिरते हैं ।

गुणी की निंदा कौन करता है ?

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं, स तं सदा निन्दति नाऽत्र[2] चित्रम् ।
यथा किराती करि-कुम्भ-जातां, मुक्तां परित्यज्य बिभर्त्ति गुञ्जाम् ।१४०।

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

यः जो यस्य जिसके गुण-प्रकर्षं गुण के महत्त्व को न वेत्ति नहीं जानता है स वह तं उसकी सदा हमेशा निन्दति निन्दा करता है अत्र इसमें चित्रं न आश्चर्य की कोई बात नहीं । यथा क्योंकि किराती किरात की स्त्री करि-कुंभ-जातां हाथी के शिर से उत्पन्न मुक्तां मोती को परित्यज्य छोड़कर गुञ्जां गुंजा को बिभर्ति धारण करती है ।

द्रव्योपार्जन का महत्त्व

माता निन्दति, नाभिनन्दति[3] पिता, भ्राता न संभाषते,
भृत्यः कुप्यति, नानुगच्छति[4] सुतः, कान्ता च नाऽलिङ्गते[5] ।
अर्थ-प्रार्थना-शङ्कया न कुरुते, संभाषणं वै सुहृत् ,
तस्माद् द्रव्य-मुपार्जयस्व[6] सुमते, द्रव्येण सर्वे वशाः ॥१४१॥

—सुभाषित रत्नभाण्डागार

सन्धि—१—तोयानाम् + इमाः २—न + अत्र । ३—न + अभिनन्दति, ४—न + अनुगच्छति, ५—न + आलिङ्गते, ६—द्रव्यम् + उपार्जयस्व ।

माता माता निन्दति निन्दा करती है, पिता पिता न अभिनन्दति प्रसन्न नहीं होता, भ्राता भाई न संभाषते बातें नहीं करता, भृत्यः नौकर कुप्यति कुपित हो जाता है, सुतः पुत्र न अनुगच्छति आज्ञा के अनुसार काम नहीं करता, कान्ता स्त्री न आलिङ्गते आलिंगन नहीं करती, च तथा अर्थ-प्रार्थन-शङ्कया रुपया-पैसा माँगने की शङ्का से सुहृत् मित्र सम्भाषणं बात चीत न कुरुते नहीं करता तस्मात् इसलिये सुमते ! हे भाई ! द्रव्यं धन उपार्जयस्व पैदा करो (क्यों कि) सर्वे सब लोग द्रव्येण द्रव्य से वशाः वशीभूत होते हैं।

ऐसे कुपुरुष को क्या कहा जाय, आप ही निश्चय कीजिये

नारीणां वचनेन कर्म कुरुते, दीनं वचो भाषते
नाऽऽलस्यं[1] विजहाति तिग्मकिरणे, प्रौढे समुत्तिष्ठति।
किञ्चित् क्वापि[2] न साहसं वितनुते, गेहे चिरं दूयते
नो वा विन्दति पौरुषं कुपुरुषः, कोऽप्येष[3] निर्णीयताम् ॥१४२॥

—पुरुष परीक्षा, १.१३

कुपुरुषः कायर पुरुष नारीणां स्त्रियों के वचनेन कहने से कर्म काम कुरुते करता है, दीनं दीन वचः वचन भाषते बोलता है, आलस्यं आलस्य को न विजहाति नहीं छोड़ता, तिग्मकिरणे सूर्य के प्रौढे खूब उग आने पर समुत्तिष्ठति उठता है, क्वापि कहीं भी किञ्चित् कुछ साहसं साहस न वितनुते नहीं करता, गेहे घर में ही चिरं बहुत दिन तक दूयते दुखी होता रहता है (तथा) पौरुषं पुरुषार्थ न विन्दति नहीं करता। (ऐसी स्थिति में) एष यह कायर पुरुष कोऽपि कैसा है, कौन है, (इसका) निर्णीयताम् निर्णय कीजिये।

दरिद्रता के नौ भीषण दोष

शीलं शातयति श्रुतं शमयति, प्रज्ञां निहन्ति क्रमात्
दैन्यं दीपयति क्षमां क्षपयति, व्रीडां निरस्यत्यपि[4]।

सन्धि—१—न + आलस्यम्। २—क + अपि। ३—कः + अपि + एष। ४—निरस्यति + अपि।

तेजो जर्जरयत्यपास्यति[१] मतिं, विस्तारयत्यर्थितां[२]
दारिद्र्यं पुरुषस्य किं न कुरुते, वैरं परं भीषणम् ॥१४३॥

—उद्भटसागर २८४

शीलं शील को शातयति घटा देता है, श्रुतं ज्ञान को शमयति समाप्त कर देता है, प्रज्ञां बुद्धि को क्रमात् धीरे-धीरे निहन्ति नष्ट कर देता है, दैन्यं दीनता को दीपयति बढ़ाता है, क्षमां सहिष्णुता को क्षपयति क्षीण करता है, व्रीडाम् अपि लज्जा को भी निरस्यति दूर फेंक देता है, तेजः तेज को जर्जरयति जर्जरित कर देता है, मतिं बुद्धि को अपास्यति हटा देता है, अर्थितां माँगने के स्वभाव को विस्तारयति बढ़ाता है (इस प्रकार) दारिद्र्यं दरिद्रता पुरुषस्य पुरुष से किं क्या परं भारी भीषणं भयङ्कर वैरं वैर न कुरुते नहीं करती है ।

जिसका जो स्वभाव है वह कभी नहीं छूटता

काकः पद्मवने रतिं न कुरुते, हंसो न कूपोदके,
मूर्खः पण्डितसंगमे न रमते, दासो न सिंहासने ।
कुस्त्री सज्जन-संगमे न रमते, नीचं जनं सेवते
या यस्य प्रकृतिः स्वभाव-जनिता, केनापि[३] न त्यज्यते ॥१४४॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

काकः कौआ पद्मवने कमल के वन में रतिं प्रेम न कुरुते नहीं करता है, हंसः हंस कूपोदके कूँआ के पानी में न नहीं (प्रेम करता है), मूर्खः मूर्ख पण्डित-संगमे विद्वानों के समागम में न रमते आनन्द नहीं पाता, दासः नौकर सिंहासने सिंहासन पर न नहीं आनन्द पाता, कुस्त्री दुष्ट स्त्री सज्जनसंगमे सज्जन पुरुषों के साथ में न रमते आनन्दित नहीं होती (वह) नीचं नीच जनं पुरुष का सेवते साथ करती है (क्यों कि) यस्य जिसकी स्वभावजनिता स्वाभाविक या जैसी प्रकृतिः प्रकृति होती है (वह) केनापि किसी के भी द्वारा

सन्धि—१—जर्जरयति + अपास्यति । २—विस्तारयति + अर्थिताम् । ३—केन + अपि ।

न त्यज्यते नहीं छोड़ी जाती। अर्थात् जिसका जैसा स्वभाव होता है वह कभी नहीं छूट सकता।

स्नेह के नौ लक्षण

स्निग्धं पश्यति सुस्मितं कथयति, स्नेहात् करेण स्पृशन्
मोक्तुं नेच्छति[1] पार्श्वतो विवृणुते, कर्तव्यमन्तर्गतम्[2]।
दोषान् संवृणुते गुणान् कथयते, नो याचिते खिद्यते
शंसामेव[3] परोक्षमाचरति[4] यत्, स्नेहस्य तल्लक्षणम्[5] ॥१४५॥

चाणक्यनीति ८, २०

स्निग्धं स्नेहभरी दृष्टि से **पश्यति** देखता है, **स्नेहात्** स्नेहपूर्वक **करेण** हाथ से **स्पृशन्** स्पर्श करता हुआ **सुस्मितं** मधुर मुस्कान के साथ **कथयति** बातें करता है, **मोक्तुं** छोड़ना **न इच्छति** नहीं चाहता है, **पार्श्वतः** बगल में—एक ओर हट कर **अन्तर्गतम्** हृदयंगत **कर्तव्यं** कर्तव्य को **विवृणुते** प्रगट करता है, **दोषान्** दोषों को **संवृणुते** छिपाता है, **गुणान्** गुणों को **कथयते** कहता है **याचिते** माँगने पर **न खिद्यते** खिन्न नहीं होता, (तथा) **परोक्षं** परोक्ष में **यत्** जो **शंसाम् एव** केवल प्रशंसा ही **आचरति** करता है **तत्** वह **स्नेहस्य** स्नेह का **लक्षणं** लक्षण है।

पण्डितों के आठ गुण

दम्भं नोद्वहते[6] न निन्दति परान्, नो भाषते निष्ठुरं,
प्रोक्तं केनचिदप्रियं[7] च सहते, क्रोधञ्च[8] नालम्बते[9]।
ज्ञात्वा शास्त्रमपि[10] प्रभूतमनिशं[11], संतिष्ठते मूकवत्,
दोषांश्छादयते[12] गुणान् वितनुते, अष्टौ[13] गुणाः पण्डिते ॥१४६॥

—उद्भटसागर ३३१

सन्धि—१—न + इच्छति। २—कर्तव्यम् + अन्तर्गतम्। ३—शंसाम् + एव। ४—परोक्षम् + आचरति। ५—तत् + लक्षणम्। ६—न + उद्वहते ७—केनचित् + अप्रियम् ८—क्रोधम् + च ९—न + आलम्बते १०—शास्त्रम् + अपि ११—प्रभूतम् + अनिशम् १२—दोषान् + छादयते १३—च + अष्टौ।

दम्भं दम्भ न उद्वहते नहीं रखता, परान् दूसरों की न निन्दति निन्दा नहीं करता, निष्ठुरं निष्ठुरता के साथ न भाषते बातें नहीं करता, केनचित् किसी के द्वारा प्रोक्तं कहे हुए अप्रियं अप्रिय वचन को सहते सहता है, क्रोधं क्रोध न आलम्बते नहीं करता, प्रभूतं बहुत अधिक शास्त्रं शास्त्र को ज्ञात्वा अपि जान कर भी मूकवत् मूक के समान अनिशं बराबर संतिष्ठते रहता है, दोषान् दोषों को छादयते छिपाता है।(तथा) गुणान् गुणों को वितनुते फैलाता है (ये) अष्टौ आठ गुणाः गुण पण्डिते पण्डित में (होते हैं)।

भीरु मनुष्य न स्त्री है न पुरुष है ?

भीरुं नाश्रयते[1] जनो न कमला, भीरोः करे वर्द्धते
भीरुं हन्त पराभवन्ति पिशुना, भीरुं हसन्ति स्त्रियः।
तर्काभास-शताकुलस्य परितः, शङ्काम्बुधौ[2] मज्जतो
भीरोः पुंस्त्वमपाकृतं[3] च विधिना, स्त्रीत्वं च नोन्मीलितम्[4] ॥१४७॥

—पुरुष परीक्षा ७–१३

जनः मनुष्य भीरुं भीरु पुरुष का न आश्रयते आश्रय नहीं लेते, कमला लक्ष्मी भीरोः भीरु के करे हाथ में न वर्द्धते नहीं बढ़ती, पिशुनाः दुष्ट लोग भीरुं भीरु पुरुष को पराभवन्ति दबा डालते है, भीरुं भीरु को स्त्रियः स्त्रियां हसन्ति हँसती हैं, तर्काभास-शताकुलस्य सैंकड़ो तर्काभासों से आकुल (तथा) परितः चारो ओर शङ्काम्बुधौ शंका रूपी समुद्र में मज्जतः डूबते हुए भीरोः भीरु पुरुष के पुंस्त्वं पुरुषत्व को विधिना विधिने अपाकृतं दूर कर दिया च और स्त्रीत्वं स्त्री भाव को (भी) न नहीं उन्मीलितम् साफ साफ प्रगट किया।

सन्धि—१–न + आश्रयते २–शङ्का + अम्बुधौ ३–पुंस्त्वम् + अपाकृतम् ४–न + उन्मीलितम्।

हठ कर लेने से कौन काम सिद्ध नहीं होता ?

निर्बन्धाज्जलधिं[1] तरन्ति मनुजा, बध्नन्ति वन्यं गजं,
विद्याना मुपयान्ति[2] पारमपरं[3], भ्राम्यन्ति रज्जोरपि[4] ।
योगाभ्यास-रता जितेन्द्रियगणा, जित्वा समीरं शनैर्,
दुर्लक्ष्यं परमं पदं सुमनसः, पश्यन्ति निबन्धिनः ॥१४८॥

—पुरुषपरीक्षा ४०, १२

मनुजाः मनुष्य **निर्बन्धात्** निर्बन्ध से **जलधिं** समुद्र को **तरन्ति** तैर जाते हैं, **वन्यं** जंगली **गजं** हाथी को **बध्नन्ति** बाँध लेते हैं, **विद्यानाम्** विद्याओं के **पारं** पार **उपयान्ति** चले जाते हैं **अपरं** और **रज्जौ अपि** रस्सी पर भी **भ्राम्यन्ति** घूमते हैं। **निबन्धिनः** निर्बन्धी पुरुष **योगाभ्यासरताः** योगाऽभ्यास में लीन होकर, **जितेंद्रियगणाः** इन्द्रियगण को जीतकर, **समीरं** वायु को **जित्वा** जीतकर **शनैः** धीरे-धीरे **सुमनसः** देवता के भी **दुर्लक्ष्यं** कठिनाई से देखने योग्य **परमं पदं** परम पद को **पश्यंति** देख लेते हैं। अभिप्राय यह कि यदि कोई मनुष्य किसी कठिन से कठिन काम को करने के लिये हृदय से भिड़ जाय तो उसे अवश्य पूरा कर लेता है।

आज्ञा-आशी-आदि (लोट्)

विश्व-कल्याण-कामना

सर्वस्तरतु[5] दुर्गाणि, सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु[6], सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥१४९॥

विक्रमोर्वशी ५, २५

सर्वः सब लोग **दुर्गाणि** कठिनाइयों को **तरतु** पार करें। **सर्वः** सब लोग

सन्धि—१–निर्बन्धात् + जलधिम् । २–विद्यानाम् + उपयान्ति । ३–पारम् + अपरम् । ४–रज्जौ + अपि । ५—सर्वः तरतु । ६—कामान् + अवाप्नोतु ।

भद्राणि आनन्द-मंगल पश्यन्तु देखें। सर्वः सब लोग कामान् इच्छित वस्तुओं को आप्नोतु पावें तथा सर्वः सब लोग सर्वत्र सब जगह नन्दतु आनन्दित रहें।

विश्व-कल्याण-कामना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥१५०॥

सर्वे सब लोग सुखिनः सुखी अस्तु हों, सर्वे सब लोग निरामयाः नीरोग सन्तु रहें, सर्वे सब लोग भद्राणि आत्म-कल्याण पश्यन्तु देखें (तथा) कश्चित् कोई दुःखभाग् दुखी मा भवेत् मत हो।

धीर पुरुष का लक्षण

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव[1] वा मरणमस्तु[2] युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१५१॥

—नीतिशतकम् ८४

नीति-निपुणाः नीति के विद्वान् निन्दन्तु निन्दा करें यदि वा अथवा स्तुवन्तु स्तुति करें, लक्ष्मीः लक्ष्मी समाविशतु आवे वा अथवा यथेष्टं खुशी से गच्छतु चली जाय, अद्यैव आज ही मरणं मरण अस्तु हो जाय वा अथवा युगान्तरे युग के बाद हो (तथापि) धीराः धीर पुरुष न्याय्यात् न्यायोचित पथः मार्ग से पदं एक पग भी न प्रविचलन्ति विचलित नहीं होते।

सब जाय पर एक न जाय

प्राणा यान्तु श्रियो यान्तु, यातु राज्यं विनश्वरम्।
एका तु स्वमुखेनोक्ता[3], वाचा मा यातु शाश्वती ॥१५२॥

सन्धि—१—अद्य + एव, २—मरणम् + अस्तु। ३—स्वमुखेन + उक्ता।

प्राणाः प्राण यान्तु चले जाँय, श्रियः धन-सम्पत्तियाँ यान्तु चली जाँय, विनश्वरं (यह) विनश्वर राज्यं राज्य यातु चला जाय तु परन्तु स्वमुखेन अपने मुँह से उक्ता कही हुई एका एकमात्र शाश्वती सत्य वाचा वाणी मा न यातु जाय।

विना भगवत्कृपा के मुक्ति नहीं

तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतात्,
अटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्[1]।
यजन्तु यागैः विवदन्तु[2] वादैर्,
विना[3] हरिं नैव[4] मृतिं तरन्ति ॥१५३॥

—वासुदेवरसानन्दः

(मनुष्य चाहे) तापैः विविध प्रकार के तापों से तपन्तु तप करें, पर्वतात् पर्वत से प्रपतन्तु गिरें, तीर्थानि तीर्थों में अटन्तु भ्रमण करें, आगमान् शास्त्रों को पठन्तु पढ़ें, यागैः यागों से यजन्तु यज्ञ करें (अथवा) वादैः वादों से विवदन्तु विवाद करें (तथापि) हरिं विना हरि की कृपा के विना मृतिं मृत्यु को नैव नहीं तरन्ति पार करते हैं ?

विधि का विधान कहीं नहीं छोड़ता ?

नश्यतु यातु विदेशं, प्रविशतु धरणीतलं खमुत्पततु[5]।
विदिशं दिशं तु गच्छतु, नो जीवस्त्यज्यते[6] विधिना ॥१५४॥

—सुभाषितरत्नसन्दोहः ३६४

जीवः यह जीव नश्यतु नष्ट हो जाय, विदेशं विदेश में यातु चला जाय, धरणीतलं पृथ्वी में प्रविशतु प्रवेश कर जाय, खम् आकाश में उत्पततु उड़ जाय, (तथा) विदिशं दिशं विभिन्न दिशाओं में गच्छतु चला जाय (तथापि) विधिना विधि के द्वारा त्यज्यते न छोड़ा नहीं जाता।

सन्धि—१—च + आगमान् २—यागैः + विवदन्तु ३—वादैः + विना ४—न + एव। ५—खम् + उत्पततु, ६—जीवः + त्यज्यते।

यह चार काम करो

त्यज दुर्जन-संसर्गं, भज साधु-समागमम् ।
कुरु पुण्य-महोरात्रं,[1] स्मर नित्यमनित्यताम्[2] ॥१५५॥

—चाणक्यनीतिः २-१३

दुर्जन-ससर्गं दुर्जनों का संसर्ग त्यज छोड़ो, साधु-समागमं सज्जनों का समागम भज करो, अहोरात्रं रातदिन पुण्यं पुण्य कुरु करो (तथा) अनित्यतां (संसार की) अनित्यता को नित्यं बराबर स्मर याद रक्खो ।

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु शान्तिं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥१५६॥

—मालतीमाधव

सर्वजगतः समस्त संसार का शिवं कल्याण अस्तु होवे, भूतगणाः सम्पूर्ण प्राणी पर-हित-निरताः दूसरों का हित करने में संलग्न भवन्तु होवें, दोषाः दोष (बुराइयाँ) शान्तिं शान्ति को प्रयान्तु प्राप्त हों (तथा) लोकः मनुष्य सर्वत्र सब जगह सुखी सुखी भवतु होवे ।

क्या पूछना चाहिये ?

गुणं पृच्छस्व मा रूपं, शीलं पृच्छस्व मा कुलम् ।
सिद्धिं पृच्छस्व मा विद्यां, भोगं पृच्छस्व मा धनम् ॥१५७॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

गुणं गुण को पृच्छस्व पूछो रूपं मा रूप को मत (पूछो), शीलं शील को पृच्छस्व पूछो कुलं मा कुल को मत (पूछो), सिद्धिं सिद्धि को पृच्छस्व पूछो विद्यां मा विद्या को मत (पूछो) (तथा) भोगं भोग को पृच्छस्व पूछो धनं मा धन को मत पूछो ।

सन्धि—१–पुण्यम् + अहोरात्रम्—२–नित्यम् + अनित्यताम् ।

इन्हें पवित्र करो

वपुः पवित्रीकुरु तीर्थयात्रया, चित्तं पवित्रीकुरु धर्मवाञ्छया ।
वित्तं पवित्रीकुरु पात्रदानतः, कुलं पवित्रीकुरु सच्चरित्रैः ॥१५८॥

उपदेशतरङ्गिणी ४,१

तीर्थयात्रया तीर्थयात्रा के द्वारा **वपुः** शरीर को **पवित्रीकुरु** पवित्र करो, **धर्मवाञ्छया** धर्म-कार्यों के करने की इच्छा से **चित्तं** चित्त को **पवित्रीकुरु** पवित्र करो, **पात्रदानतः** सत्पात्रों को दान देने से **वित्तं** धन को **पवित्रीकुरु** पवित्र करो (तथा) **सच्चरित्रैः** अच्छे आचरणों से **कुलं** कुल को **पवित्रीकुरु** पवित्र करो ।

भगवान् से पाँच प्रार्थनायें

अविनयमपनय[1] विष्णो ! दमय मनः शमय विषय-मृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय, तारय संसार-सागरतः ॥१५९॥

—षट्पदी स्तोत्रम् १

विष्णो ! हे भगवन् ! **अविनयं** अविनय को **अपनय** दूर करो, **मनः** मन को **दमय** दबाओ, **विषय-मृगतृष्णां** विषयों की मृगतृष्णा को **शमय** शान्ति करो, **भूतदयां** प्राणियों पर दयाभाव का **विस्तारय** विस्तार करो (तथा) **संसार-सागरतः** संसाररूपी सागर से **तारय** पार करो ।

क्या करो और क्या नहीं ?

धर्मं चरत माऽधर्मं,[2] सत्यं वदत माऽनृतम्[3] ।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं, परं पश्यत माऽपरम्[4] ॥१६०॥

धर्मं धर्म **चरत** करो **अधर्मं** अधर्म **मा** नहीं । **सत्यं** सत्य **वदत** बोलो **अनृतं** झूठ **मा** नहीं । **दीर्घं** दूर तक **पश्यत** देखो **ह्रस्वं** समीप तक—कम दूर तक **मा** नहीं । **परं** परम पुरुष को **पश्यत** देखो **अपरं** तुच्छ (संसार) को **मा** नहीं ।

सन्धि—१—अविनयम् + अपनय । २—मा + अधर्मम्, ३—मा + अनृतम्, ४—मा + अपरम् ।

सात उपदेश

यज देहि प्रजा रक्ष, धर्मं समनुपालय।
अमित्रान् जहि कौन्तेय, मित्राणि परिपालय ॥१६१॥

—शान्तिपर्व, १५,५३.

कौन्तेय ! हे युधिष्ठिर यज यज्ञ करो, देहि दान करो, प्रजा रक्ष : प्रजा की रक्षा करो, धर्मं समनुपालय धर्म का पालन करो, अमित्रान् जहि शत्रुओं को मारो (तथा) मित्राणि मित्रों का परिपालय पालन करो।

ये सज्जनों के बारह लक्षण हैं ?

तृष्णां छिन्धि, भज क्षमां, जहि मदं, पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि[1] साधुपदवीं, सेवस्व विद्वज्जनान्।
मान्यान् मानय, विद्विषोऽप्यनुनय[2], ह्याच्छादय[3] स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्[4] सतां लक्षणम् ॥१६२॥

—नीतिशतकम् ७८.

तृष्णां तृष्णा को छिन्धि काटो, क्षमां क्षमा को भज धारण करो, मदं मद को—अभिमान को जहि छोडो, पापे पाप में रतिं प्रेम मा मत कृथाः करो, सत्यं सत्य ब्रूहि बोलो, साधुपदवीं सज्जनों के मार्ग पर अनुयाहि चलो, विद्वज्जनान् विद्वानों की सेवस्व सेवा करो, मान्यान् माननीय पुरुषों का मानय संमान करो, विद्विषः शत्रुओं से अपि भी अनुनय अनुनय-विनयपूर्ण व्यवहार रखो, स्वान् अपने गुणान् गुणों को आच्छादय छिपाओ, कीर्तिं यश को पालय बचाये रहो, (तथा) दुःखिते दुखी लोगों के ऊपर दयां दया कुरु करो (क्योंकि) एतत् यह सतां सज्जन पुरुषों का लक्षणं लक्षण है।

सन्धि—१–ब्रूहि + अनुयाहि। २–विद्विषः + अपि + अनुनय। ३–हि + आच्छादय ४–दयाम् + एतत्।

इसे एक बार भी तो सोचो

अश्नीत पिबत खादत, जागृत संविशत चलत तिष्ठत वा ।
सकृदपि[1] चिन्तयताऽन्तः,[2] सावधिको देहबन्ध इति ॥१६३॥

—वैराग्यशतकम् ५४

अश्नीत सुखभोग करो, पिबत पीओ, खादत खाओ, जागृत जागो, संविशत बैठो, चलत चलो वा अथवा तिष्ठत खड़े रहो (परन्तु) सकृत् एक बार अपि भी अन्तः हृदय में यह चिन्तयत अवश्य सोचो (कि) देहबन्धः शरीर सावधिकः एक दिन नष्ट होने वाला है ।

विधि (लिङ् लकार)

चार शिक्षायें

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद् वाचं, मनः पूत समाचरेत् ॥१६४॥

—मनुस्मृति ६. ४६.

पादं पैर को दृष्टि पूतं दृष्टि से पवित्र कर अर्थात् आँख से देखकर न्यसेत् रखना चाहिये, जलं जल को वस्त्रपूतं कपड़े से पवित्र कर अर्थात् छानकर पिबेत् पीना चाहिये, वाणीं वचन को सत्यपूतां सत्य से पवित्र कर ववेत् बोलना चाहिये (तथा) मनः पूतं जो काम मन को पवित्र मालूम पड़े उसे समाचरेत् करना चाहिये ।

अकेले क्या नहीं करना चाहिये ?

एकः स्वादु न भुञ्जीत, एकश्चार्थान्[3] न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं,[4] नैकः[5] सुप्तेषु जागृयात् ॥१६५॥

—उद्योगपर्व ३३,४६,

सन्धि—१-सकृत् + अपि, २-चिन्तयत + अन्तः । ३—एकः + च + अर्थात् । ४—गच्छेत् + अध्वानम् ५—न + एकः ।

एकः अकेले स्वादु मीठे पदार्थ को न भुञ्जत नहीं खाना चाहिये, च तथा एकः अकेले अर्थान् गम्भीर विषयों को न चिन्तयेन् नही सोचना चाहिये, एकः अकेले अध्वानं रास्ते पर न गच्छेत् नही चलना चाहिये अर्थात् अकेले लम्बी यात्रा नहीं करनी चाहिये (तथा) सुप्तेषु बहुत लोगो के सोते रहने पर बड़ा अकेले न जागृयात् नहीं जागना चाहिये ।

पुत्र के साथ किस अवस्था में कैसा व्यवहार करना चाहिये

लालयेत् पञ्चवर्षाणि, दशवर्षाणि ताड़येत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्[1] ॥१६६॥

चाणक्यनीति ३ १८.

पुत्रं पुत्र को पञ्च पाँच वर्षाणि वर्ष तक लालयेत् प्यार करना चाहिये, दश वर्षाणि दश वर्ष तक अर्थात् पाँचवे वर्ष से पन्द्रहवे वर्ष तक ताडऽयेत् ताडन करना चाहिये तु परन्तु षोडशे सोलहवे वर्षे वर्ष के प्राप्ते पहुँच जाने पर पुत्र के साथ मित्रवत् मित्र के समान आचरेत् आचरण करना चाहिये ।

विश्व मङ्गल कामना

दुर्जनः सज्जनो भूयात्, सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्[2] ।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यः, मुक्तश्चान्यान्[3] विमोचयेत् ॥१६७॥

दुर्जन दुर्जन पुरुष सज्जनः सज्जन भूयात् होवे, सज्जनः सज्जन पुरुष शान्तिम् शान्ति आप्नुयात् पावे, शान्तः शान्त पुरुप बन्धेभ्यः बन्धनों से मुच्येत मुक्त हो च तथा मुक्तः मुक्त पुरुष अन्यान् दूसरों को विमोचयेत् मुक्त करे ।

सन्धि—१—मित्रवत् + अचरेत् । २—शान्तिम् + आपुयात् । ३— मुक्तः + च + अन्यान् ।

किसको किससे जीतना चाहिये ?

अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्, असाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन, जयेत् सत्येन चाऽनृतम्[1] ॥१६८॥

अक्रोधेन शान्ति से **क्रोधं** क्रोध को **जयेत्** जीतना चाहिये, **साधुना** सद् व्यवहार से **असाधुं** दुर्जन को **जयेत्** जीतना चाहिये, **दानेन** दान से **कदर्यं** कृपण को **जयेत्** जीतना चाहिये **च** और **सत्येन** सत्य से **अनृतं** झूठ को **जयेत्** जीतना चाहिये ।

चार विशेष शिक्षायें

न तत् तरेत् यस्य न पारमुत्तरेत्,
न तत् हरेत् यत् पुनराहरेत् परः ।
न तत् खनेत् यस्य न मूलमुद्धरेत्,
न तं हन्यात् यस्य शिरो न पालयेत् ॥१६९॥

शान्तिपर्व ४०.६५.

तत् वह जलाशय **न तरेत्** नहीं तैरना चाहिये **यस्य** जिसके **पारं** पार **न उत्तरेत्** नहीं उतर सके, **तत्** वह वस्तु **न हरेत्** नहीं लेनी चाहिये **यत्** जिसे **पुनः** फिर **आहरेत् परः** दूसरा आदमी ले ले, **तत्** उस चीज को **न खनेत्** नहीं खनना चाहिये **यस्य** जिसके **मूलं** मूल को **न उद्धरेत्** न निकाल सके (तथा) **तं** उसे **न हन्यात्** नहीं मारना चाहिये **यस्य** जिसके **शिरः** शिर को **न पालयेत्** सुरक्षित न रख सके ।

दीर्घ जीवन के लिये प्रार्थना

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम् ।
नन्दाम शरदः शतम्, मोदाम शरदः शतम् ॥

सन्धि—१—च + अनृतम् ।

भवाम शरदः शतम्, शृणवाम शरदः शतम्।
प्रब्रवाम शरदः शतम्, अजिताः स्याम शरदः शतम् ॥१७०॥

—तैत्तिरीय आरण्यक ४.४२.

(हम लोग) शतं सौ शरदः वर्ष पश्येम देखें, शतं शरदः सौ वर्ष जीवेम जीवें, शतं शरदः सौ वर्ष नन्दाम आनन्द से रहे, शतं शरदः सौ वर्ष मोदाम प्रसन्न रहें, शतं शरदः सौ वर्ष भवाम उन्नति करें, शतं शरदः सौ वर्ष शृणवाम सुनें, शतं शरदः सौ वर्ष प्रब्रवाम बोलें (तथा) शतं शरदः सौ वर्ष अजिताः अपराजित स्याम रहें अर्थात् विजयी बनकर रहें।

भविष्यत् काल (लृट् लकार)

एक चेतावनी

यदि सत्सङ्ग-निरतो, भविष्यसि भविष्यसि।
यदि दुर्जन-संसर्गे, पतिष्यसि पतिष्यसि ॥१७१॥

—धर्मबिन्दुः

यदि अगर सत्सङ्ग-निरतः सत्सङ्ग में संलग्न भविष्यसि होवोगे (तो) भविष्यसि उन्नति करोगे (और) यदि अगर दुर्जनसंसर्गे दुर्जनों के संसर्ग में पतिष्यसि पड़ोगे (तो) पतिष्यसि गिर जावोगे नष्ट हो जावोगे।

सुख की आशा में जीवन ही समाप्त?

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वान् उदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥१७२॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

रात्रिः रात गमिष्यति बीतेगी, सुप्रभातं अच्छा सबेरा भविष्यति होगा,

भास्वान् सूर्य **उदेष्यति** उगेंगे (और) **पङ्कजश्रीः** कमल की शोभा **हसिष्यति** खिल उठेगी। **कोशगते** कोश के भीतर पड़े हुए **द्विरेफे** भ्रमर के **इत्थं** इस प्रकार **विचिन्तयति** सोचते रहते हुए ही **हा हन्त** अफसोस! **नलिनीं** कमलिनी को **गजः** हाथी ने **उज्जहार** उखाड़ लिया।

विरहिणी राधा के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण की चिन्ता

किं करिष्यति किं वदिष्यति, सा चिरं विरहेण।
किं जनेन धनेन किं मम, किं गृहेण सुखेन ॥१७३॥

—गीतगोविन्दम् ३-२

सा वह (राधा) **चिरं** बहुत दिनों तक **विरहेण** विरह हो जाने के कारण **किं करिष्यति** क्या करती होगी? **किं वदिष्यति** क्या कहती होगी? (हाय! उसके बिना) **मम** मेरे **जनेन किं** परिजन से क्या, **धनेन किं** धन से क्या, **गृहेण किं** घर से क्या (तथा) **सुखेन किम्** सुख से क्या?

आत्म-विस्मृति

करिष्यामि करिष्यामि, करिष्यामीति चिन्तया।
मरिष्यामि मरिष्यामि, मरिष्यामीति विस्मृतम् ॥१७४॥

—उद्भटसागर १४६

करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामि करूँगा, करूँगा, करूँगा **इति** इस **चिन्तया** चिन्ता के कारण **मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामि** मरूँगा, मरूँगा, मरूँगा, **इति** यह **विस्मृतम्** भूल गया।

रामायण के सम्बन्ध में कवि की भविष्य वाणी

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः, सरितश्च महीतले।
तावद् रामायण-कथा, लोकेषु प्रचरिष्यति ॥१७५॥

—वाल्मीकिरामायणम्

गिरयः पर्वत च तथा सरितः नदियाँ महीतले पृथिवी पर यावत् जब तक स्थास्यन्ति रहेंगी तावत् तब तक रामायण-कथा रामायण की कथा लोकेषु लोगों में प्रचरिष्यति प्रचलित रहेगी।

य: पठिष्यति यो लिखिष्यति, यश्चलिष्यति सत्पथे ।
स हसिष्यति स लसिष्यति, स विजेष्यति भूतले ॥१७६॥

—सम्पादक

यः जो पठिष्यति पढ़ेगा, यः जो लिखिष्यति लिखेगा, (तथा) यः जो सत्पथे अच्छे रास्ते पर चलिष्यति चलेगा स वह हसिष्यति हँसेगा, स वह लसिष्यति सुखी रहेगा (तथा) स वह भूतले संसार में विजेष्यति विजयी होगा।

हेतु-हेतुमद्भूत (लृङ् लकार)

गङ्गा की स्तुति

किं वाऽभविष्यन् भववर्तिनो जना
नानाघ-संगाभिभवोत्त्थ-दुःखाः ।
न चाऽगमिष्यद् भवती भुवं चेत्
पुण्योदके गौतमि शम्भुकान्ते ॥१७७॥

—ब्रह्म० गी० मा० ४८,६

पुण्योदके ! हे पवित्र जलवाली शम्भुकान्ते ! शिवजी की प्रिया गौतमि गङ्गे ! चेत् यदि भवती आप भुवं भूलोक को न—आगमिष्यत् नहीं आतीं (तो) नानाऽघ-संगाऽभिभवोत्त्थ-दुःखा: नाना प्रकार के पापों के संसर्ग एवं दबाव से उत्पन्न दुःख वाले भववर्तिनः संसार में रहनेवाले जनाः मनुष्य किम् क्या अभविष्यन् होते अर्थात् इनकी क्या दशा होती ?

श्री गौराङ्ग महाप्रभु की प्रशस्ति

भवता भव-ताप-हारिणा,
यदि नोदेष्यत गौर ! भूतले ॥
कलिता कलि-तापतो व्यथा,
कथमाप्स्यद् विरतिं तदा नृणाम् ॥१७८॥

—श्री गौराङ्गविरुदावली

गौर ! हे गौराङ्ग प्रभु ! **भवताप-हारिणा** संसार के ताप को हरनेवाले **भवता** आपके द्वारा **यदि** अगर **भूतले** पृथिवी पर **न उदेष्यत** जन्म नहीं लिया जाता **तदा** तो **कलितापतः** कलियुग के ताप से **कलिता** उत्पन्न हुई **नृणां** मनुष्यों की **व्यथा** व्यथा **कथं** कैसे **विरतिम्** समाप्ति को **आप्स्यत्** पाती, अर्थात् कैसे समाप्त होती ?

तब विद्यार्थी योग्य क्यों नहीं होते ?

छात्राः सदैव-समये यदि आगमिष्यन्,
व्यर्थं स्वकीय समयं यदि नाऽकरिष्यन् ।
पाठं श्रमेण च निजं यदि तेऽपठिष्यन्,
योग्याः कथं नहि तदा वद तेऽभविष्यन् ॥१७६॥

—सम्पादक

यदि अगर **छात्राः** विद्यार्थी **सदैव** हमेशा **समये** समय पर **आगमिष्यन्** आते, **यदि** अगर **स्वकीयसमयं** अपने समय को **व्यर्थं** व्यर्थ **न अकरिष्यन्** नहीं करते, **च** तथा **यदि** अगर **निजं** अपने **पाठं** पाठ को **ते** वे **श्रमेण** परिश्रम से **अपठिष्यन्** पढ़ते **तदा** तो **वद** बताओ **ते** वे **योग्याः** योग्य **कथं नहि** क्यों नहीं **अभविष्यन्** होते ?

तब सब को सुख क्यों नहीं मिलता ?

यदा स्वधर्मे सकलोऽभविष्यत् , न कोऽपि लोकः कुपथेऽचलिष्यत् ।
श्रमं च सर्वो मनुजोऽकरिष्यत् , सुखं कथं नैव तदाऽमिलिष्यत् ॥१८०॥

—सम्पादक

यदा जब सकलः सब कोई स्वधर्मे अपने धर्म पर अभविष्यत् होता, कोऽपि कोई लोकः मनुष्य कुपथे कुमार्ग पर न अचलिष्यत् नहीं चलता, च तथा सर्वः सब मनुजः आदमी श्रमं परिश्रम अकरिष्यत् करता तदा तब सुखं सुख कथं नैव क्यों नहीं अमिलिष्यत् मिलता ?

जानकीं रावणो नाऽहरिष्यद् यदि, राघवो रावणं नाऽहनिष्यत् तदा ।
कर्म निन्द्यं नरो नाऽचरिष्यद् यदि, भूतले सङ्कटे नाऽपतिष्यत् तदा ॥१८१॥

—सम्पादक

यदि यदि रावणः रावण जानकीं जानकी को न अहरिष्यत् नहीं हरता तदा तो राघवः रामचन्द्र रावणं रावण को न अहनिष्यत् नहीं मारते । नरः मनुष्य यदा यदि निन्द्यं नीच कर्म काम न आचरिष्यत् नहीं करता तदा तो भूतले संसार में (वह) सङ्कटे संकट में न नहीं अपतिष्यत् पड़ता ।

अनद्यतन परोक्ष भूत

जटायु की वीरता

न बिभाय न जिह्राय, न चक्लाम न विव्यथे ।
आघ्नानो विध्यमानो वा, रणान्निववृते न च ॥१८२॥

भट्टि ५. १०२

(जटायु रावण द्वारा) आघ्नानः मारा जाता हुआ (तथा) विध्यमानः अपि बिंधा जाता हुआ भी न बिभाय न डरा, न जिह्राय न लज्जित हुआ, न चक्लाम न क्लान्त हुआ, न विव्यथे न व्यथित हुआ न च और न रणात् रण से निववृते निवृत्त हुआ ।

सेतुबन्ध हो जाने पर सबको प्रसन्नता

तेनेऽद्रिबन्धो ववृधे पयोधिः, तुतोष रामो मुमुदे कपीन्द्रः ।
तत्रास शत्रुर्ददृशे सुबेलः, प्रापे जलान्तो जहृषुः प्लवङ्गाः ॥१८३॥

—भट्टि १३—२०

(समुद्र में) **अद्रिबन्धः** पर्वतों द्वारा सेतुबन्ध **तेने** किया गया, **पयोधिः** समुद्र **ववृधे** बढ़ा, **रामः** राम **तुतोष** सन्तुष्ट हुए, **कपीन्द्रः** सुग्रीव **मुमुदे** प्रसन्न हुए, **शत्रुः** शत्रु **तत्रास** डरा, **सुबेलः** सुबेल पर्वत **ददृशे** दीख पड़ा, **जलान्तः** जल का अन्त **प्रापे** मिला (और) **प्लवङ्गाः** बन्दर **जहृषुः** हर्षित हुए ।

समुद्र पार हो जाने पर वानरों का हर्षोद्रेक

भ्रेमुर् ववल्गुर् ननृतुर् जजक्षुर्, जगुः समुत्पप्लुविरे निषेदुः ।
आस्फोटयाञ्चक्रुरभिप्रणेदू, रेजुर् ननन्दुर् वियमुः समीयुः ॥१८४॥

—भट्टि १३—२८

(समुद्र पार होने पर वानर) **भ्रेमुः** घूमने लगे, **ववल्गुः** कूदने लगे, **ननृतुः** नाचने लगे, **जजक्षुः** खाने लगे, **जगुः** गाने लगे, **समुत्पप्लुविरे** उछलने कूदने लगे, **निषेदुः** बैठ गये, **आस्फोटयाञ्चक्रुः** ताली ठोकने लगे, **अभिप्रणेदुः** खूब आवाज करने लगे, **रेजुः** चमकने लगे, **ननन्दुः** आनन्दित हुए, **वियमुः** इधर-उधर जाने लगे (और) **समीयुः** एकत्र बैठे ।

किसने अपना यश संसार में फैलाया

न चकार कलिं न जहार धनम् , न जघान रिपुं न जहास परम् ।
न बभूव कदापि अधर्म-रुचिः, स ततान यशो भुवने विमलम् ॥१८५॥

—सम्पादक

(जिसने कभी किसी से) **कलिं** झगड़ा **न चकार** नहीं किया, (किसी का कभी) **धनं** धन **न जहार** नहीं लिया, **रिपुं** शत्रु को (कभी भी) **न**

जघान नहीं मारा, परं दूसरे को (कभी) न जहास नहीं हँसा, (तथा जो कभी) अधर्मरुचिः अधर्म का प्रेमी न बभूव नहीं हुआ स उसने भुवने संसार में विमलं विमल यशः यश ततान फैलाया।

अनद्यतन भूत लङ् लकार

वह मनुष्य सबसे योग्य है

अपठत् योऽखिला विद्याः, कलाः सर्वा अशिक्षत।
अजानात् सकलं वेद्यं, स वै योग्यतमो नरः ॥१८६॥

—सम्पादक

यः जिसने अखिलाः समस्त विद्याः विद्याओं को अपठत् पढ़ा, सर्वाः समस्त कलाः कलाओं को अशिक्षत सीखा (तथा) सकलं सब प्रकार की वेद्यं जानने योग्य बात को अजानात् जाना स वह वै निश्चय ही योग्यतमः बहुत योग्य नरः मनुष्य है।

वही पुरुष सहृदय है

सर्वेषां योऽशृणोद् वाक्यं, सर्वेषां व्यदधाद्धितम्।
सर्वेषामहरत् कष्टं, स वै सहृदयः पुमान् ॥१८७॥

—सम्पादक

यः जिसने सर्वेषां सबके वाक्यं वचन को अशृणोत् सुना, सर्वेषां सबका हितं हित व्यदधात् किया (तथा) सर्वेषां सबके कष्टं कष्ट को अहरत् दूर किया स वै वही पुमान् मनुष्य सहृदयः सहृदय है, हृदय वाला है।

वही मनुष्य-धर्म का जानकार है

अहरत् न पर-द्रव्यम्, अपश्यत् न पर-स्त्रियम्।
नाऽपीडयत् परप्राणान्, स धर्मज्ञो नरः स्मृतः ॥१८८॥

—सम्पादक

(जिसने) परद्रव्यं दूसरे के द्रव्य को न अहरत् नहीं लिया, परस्त्रियं दूसरे की स्त्री को न अपश्यत् (कुदृष्टि से) नहीं देखा (तथा) परप्राणान् दूसरे के प्राणों को न अपीडयत् पीड़ा नहीं दी स वह नरः मनुष्य धर्मज्ञः धर्मज्ञ स्मृतः कहा गया है।

वही श्रेष्ठ सेवक है

आहूतः शीघ्रमागच्छत्, अगच्छत् प्रेषितो द्रुतम्।
आज्ञप्तोऽसाधयत् सर्वं, स भृत्यः श्रेष्ठ उच्यते ॥१८९॥

—सम्पादक

(जो) आहूतः बुलाने पर शीघ्रम् शीघ्र आगच्छत् आया, प्रेषितः भेजने पर द्रुतं तत्काल अगच्छत् गया, आज्ञप्तः आज्ञा देने पर सर्वं सब काम असाधयत् सिद्ध कर दिया स वह भृत्यः नौकर श्रेष्ठः श्रेष्ठ उच्यते कहा जाता है।

वही मनुष्य मनुष्यों में उत्तम है

अमानयत् सदा मान्यान्, पूजनीयान् अपूजयत्।
अपालयत् पालनीयान्, स एव मनुजोत्तमः ॥१९०॥

—सम्पादक

(जिसने) मान्यान् माननीय पुरुषों का सदा सर्वदा अमानयत् सम्मान किया, पूजनीयान् पूजनीय पुरुषों की अपूजयत् पूजा की, (तथा) पालनीयान् पालन करने योग्य लोगों का अपालयत् पालन किया स एव वही मनुजोत्तमः मनुष्यों में उत्तम मनुष्य है।

वही मनुष्य कुशल है

अप्रीणाद् यो गुरून् भक्त्या, प्रीत्या मित्राण्यतोषयत्।
शीलेनाऽमोहयत् सर्वान्, स एव कुशलो नरः ॥१९१॥

—सम्पादक

यः जिसने गुरून् गुरुजनों को भक्त्या भक्ति से अप्रीणात् प्रसन्न किया, प्रीत्या प्रेम से मित्राणि मित्रों को अतोषयत् सन्तुष्ट किया (तथा) शीलेन शील से सर्वान् सबको अमोहयत् मोहित कर लिया स एव वही नरः मनुष्य कुशलः कुशल है ।

सामान्य भूत लुङ् लकार

किसने उत्तम जीवन बिताया

अकार्षीत् कुशलं कर्म अवादीत् मधुरां गिरम् ।
अश्रौषीत् दीन-वाक्यानि अहार्षीत् परसङ्कटम् ॥१६२॥
अगमत् सत्पथे नित्यम् अभूत् सर्वस्य साधकः ।
अप्राक्षीत् कुशलं सर्वान् सोऽनैषीत् जीवनं वरम् ॥१६३॥

—सम्पादक

(जिसने) कुशलं कर्म अच्छा काम अकार्षीत् किया, मधुरां गिरं मधुर वाणी अवादीत् बोला, दीन-वाक्यानि दीनों के वचनों को अश्रौषीत् सुना, परसङ्कटम् दूसरे के संकट को अहार्षीत् दूर किया, नित्यं सर्वदा सत्पथे अच्छे मार्ग पर अगमत् गमन किया, सर्वस्य सबका साधकः कार्य साधन करने वाला अभूत् हुआ, सर्वान् सबसे कुशलं कुशल अप्राक्षीत् पूछा स उसने वरं उत्तम जीवनं जीवन अनैषीत् बिताया ।

महाराज दशरथ का वर्णन

सोऽध्यैष्ट वेदान् त्रिदशानयष्ट, पितॄनपारीत् सममंस्त बन्धून् ।
व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ, समूलघातं न्यवधीदरींश्च ॥१६४॥

स उन्होंने (दशरथ ने) वेदान् वेदों को अध्यैष्ट पढ़ा, त्रिदशान् देवों का अयष्ट यजन पूजन किया, पितॄन् पितरों को अपारीत् तृप्त किया, बन्धून् बन्धुओं का अमंस्त सम्मान किया, षड्वर्गम् काम क्रोध आदि छ शत्रुओं के वर्ग को व्यजेष्ट जीता, नीतौ नीति में अरंस्त प्रेम रक्खा च तथा अरीन् शत्रुओं को समूलघातं समूल न्यवधीत् मारा, विनष्ट किया ।

कर्म-भाववाच्य प्रकरणम्

किससे किसकी रक्षा होती है ?

सत्येन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं, कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥१६५॥

—विदुरनीति ३४. ३६

सत्येन सत्य से **धर्मः** धर्म **रक्ष्यते** सुरक्षित होता है, **विद्या** विद्या **योगेन** निरन्तर अभ्यास से **रक्ष्यते** सुरक्षित रहती है, **मृजया** सफाई से **रूपं** रूप **रक्ष्यते** सुरक्षित रहता है (तथा) **कुलं** कुल **वृत्तेन** सच्चरित्रता से **रक्ष्यते** सुरक्षित रहता है ।

किस शास्त्र का जनता में प्रचार करना चाहिए ?

विवेको जन्यते येन, संयमो येन पाल्यते ।
धर्मः प्रकाश्यते येन, मोहो येन विहन्यते ॥१६६॥
मनो नियम्यते येन, रागो येन निकृत्यते ।
तद्देयं भव्यजीवानां, शास्त्रं निर्धूत-कल्मषम् ॥१६७॥

—अमितगति-श्रावकाचार ६, १०३-१०४

येन जिससे **विवेकः** विवेक **जन्यते** उत्पन्न किया जाता है, **येन** जिससे **संयमः** संयम **पाल्यते** पाला जाता है, **येन** जिससे **धर्मः** धर्म **प्रकाश्यते** प्रकाशित किया जाता है, **येन** जिससे **मोहः** अज्ञान **विहन्यते** नष्ट किया जाता है, **येन** जिससे **मनः** मन **नियम्यते** रोका जाता है (तथा) **येन** जिससे **रागः** आसक्ति **निकृत्यते** काटी जाती है **तत्** वह **निर्धूतकल्मषम्** पाप नष्ट करनेवाला **शास्त्रं** शास्त्र **भव्यजीवानां** उत्तम जीवों को **देयं** देना चाहिये ।

अभ्यास से विद्या

अभ्यासाद्धार्यते[1] विद्या, कुलं शीलेन धार्यते।
गुणेन ज्ञायते आर्यः, कोपो नेत्रेण गम्यते ॥१६८॥

—चाणक्यनीति, ५. ८

विद्या विद्या अभ्यासाद् अभ्यास से धार्यते धारण की जाती है, कुलं कुल शीलेन शील से धार्यते धारण किया जाता है, गुणेन गुण से आर्यः श्रेष्ठ पुरुष ज्ञायते पहचाना जाता है (तथा) कोपः क्रोध नेत्रेण नेत्र से गम्यते मालूम किया जाता है।

शूर और भीरु में भेद

सर्वत्र लाल्यते शूरो, भीरुः सर्वत्र हन्यते।
पच्यन्ते केवला मेषाः, पूज्यन्ते युद्ध-दुर्मदाः ॥१६६॥

—सभारञ्जनशतकम् ४८

शूरः वीर पुरुष सर्वत्र सब जगह लाल्यते सम्मानित होता है (और) भीरुः डरपोक आदमी सर्वत्र सब जगह हन्यते मारा जाता है। केवलाः केवल, वीरता से हीन मेषाः भेड़ पच्यन्ते पकाये जाते हैं (पर) युद्ध-दुर्मदाः युद्ध में वीरता दिखाने वाले (भेड़) पूज्यन्ते पूजे जाते हैं।

धन का प्रभाव

पूज्यते यदपूज्योऽपि[2], यदगम्योऽपि[3] गम्यते।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि[4], तत् प्रभावो धनस्य च ॥२००॥

—पञ्चतन्त्रम्

अपूज्यः अपूज्य अपि भी यत् जो पूज्यते पूजा जाता है, अगम्यः अपि अगम्य आदमी के पास भी यत् जो गम्यते जाया जाता है, (तथा) अवन्द्यः

सन्धि—१–अभ्यासात् + धार्यते। २–यत् + अपूज्यः + अपि। ३–यत् + अगम्यः + अपि। ४–यत् + अवन्द्यः + अपि।

अवन्दनीय आदमी की अपि भी यत् जो वन्द्यते वन्दना की जाती है तत् वह धनस्य धन का प्रभावः प्रभाव है ।

विद्वान् और राजा में भेद

विद्वत्त्वं च नृपत्त्वं च, नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥२०१॥

विद्वत्त्वं विद्वत्ता च तथा नृपत्वं नृपत्व (ये दोनों) कदाचन कभी भी तुल्यं बराबर नैव नहीं हैं । (क्योंकि) राजा राजा स्वदेशे अपने ही देश में पूज्यते पूजा जाता है (पर) विद्वान् विद्वान् सर्वत्र सब जगह पूज्यते पूजा जाता है ।

व्यवहार की महत्ता

जातिमात्रेण किं कश्चित्, हन्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय, बध्यः पूज्योऽथवा[1] भवेत् ॥२०२॥

—हितोपदेश १. ५६

किं क्या कश्चित् कोई जातिमात्रेण जाति मात्र से हन्यते मारा जाता है (अथवा) पूज्यते पूजा जाता है ? व्यवहारं व्यवहार को—चाल-चलन को परिज्ञाय समझकर (मनुष्य) वध्यः मारने योग्य अथवा अथवा पूज्यः पूजने योग्य भवेत् होता है ।

भगवान् का स्वागत

आस्यताम् अरविन्दाक्ष !, गृह्यताम् अर्हणं च नः ।
तुष्यतां सन्ति नीवारा, उष्यतां यदि रोचते ॥२०३॥

—श्रीमद्भागवतम् ६. २०

सन्धि—१–पूज्यः + अथवा ।

अरविन्दाक्ष ! कमलनयन श्री कृष्ण ! आस्यताम् बैठिये, नः हम लोगों के अर्हणां सत्कार को गृह्यताम् ग्रहण कीजिये, नीवाराः नीवार सन्ति हैं (उनसे) तुष्यतां सन्तुष्ट होइये च और यदि यदि रोचते अच्छा लगता हो तो उष्यतां निवास कीजिये ।

सत्कार के वचन

भक्ष्यतां भुज्यतां नित्यं, दीयतां रम्यतामिति[1] ।
गीयतां पीयतां चेति[2], शब्दश्चासीद्[3] गृहे गृहे ॥२०४॥

—महाभारतम् स. २११

नित्यं हमेशा भक्ष्यतां खाइये, भुज्यतां भोगिये, दीयतां दीजिये, रम्यतां विहार कीजिये गीयतां गाइये च तथा पीयतां पीजिये इति ऐसा शब्दः शब्द गृहे गृहे घर घर आसीत् होता था ।

धर्म का सार

श्रूयताम् धर्म-सर्वस्वं, श्रुत्वा चैवाऽवधार्यताम्[4] ।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥२०५॥

—महाभारतम्

धर्म-सर्वस्वं धर्म का सर्वस्व, सार रहस्य श्रूयतां सुनिये चैव तथा श्रुत्वा सुनकर अवधार्यतां धारण कीजिये। (जो बातें) आत्मनः अपने प्रतिकूलानि प्रतिकूल हों (उन्हें) परेषां दूसरों के लिये भी न समाचरेत् नहीं करना चाहिये ।

सन्धि—१—रम्यताम् + इति । २—च + इति । ३—शब्दः + च + आसीत्
४—च + एव + अवधार्यताम् ।

पापी पेट के कारण

किमकारि[1] न कार्पण्यं, कस्याऽलङ्घि[2] न देहली ।
अस्य पापोदरस्यार्थे[3], किमनाटि[4] न नाटकम् ॥२०६॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

अस्य इस पापोदरस्य पापी पेट के अर्थे लिये किं क्या कार्पण्यं कृपणता न अकारि नहीं की गई, कस्य किसकी देहली देहली न अलङ्घि नहीं लाँघी गई तथा किं कौन नाटक नाटक न अनाटि नहीं खेला गया ?

श्री दुर्गा स्तुति

त्वयैतद्[5] धार्यते विश्वं त्वयैतत्[6] सृज्यते जगत् ।
त्वयैतद्[7] पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते[8] च सर्वदा ॥२०७॥

—दुर्गासप्तशती १. ५६

देवि हे देवि दुर्गे ! त्वया तुम्हारे द्वारा एतद् यह विश्वं संसार धार्यते धारण किया जाता है, त्वया तुम्हारे द्वारा एतत् यह जगत् संसार सृज्यते उत्पन्न किया जाता है, त्वया तुम्हारे द्वारा एतत् यह जगत् पाल्यते पालित होता है च और अन्ते अन्त में त्वम् तुम सर्वदा हमेशा (संसार को) अत्सि खा जाती हो अर्थात् जगत् का संहार करती हो ।

सन्धि—१–किम् + अकारि । २–कस्य + अलङ्घि । ३–पापोदरस्य + अर्थे । ४–किम् + अनाटि । ५–६–७–त्वया + एतत् । ८–त्वम् + अत्सि + अन्ते ।

कृदन्त प्रकरणम्

तव्य तथा अनीयर्

पाँच आदमी के साथ रहना चाहिये ?

पञ्चभिः सह गन्तव्यं, स्थातव्यं पञ्चभिः सह ।
पञ्चभिः सह वक्तव्यं, न दुःखं पञ्चभिः सह ॥२०८॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

पञ्चभिः पाँच लोगों के **सह** साथ **गन्तव्यं** चलना चाहिये, **पञ्चभिः** पांच लोगों के **सह** साथ **स्थातव्यं** रहना चाहिये (तथा) **पञ्चभिः** पाँच लोगों के साथ **वक्तव्यं** बोलना चाहिये (क्योंकि) **पञ्चभिः** पाँच लोगों के **सह** साथ (रहने से) **दुःखं न** दुःख नहीं होता ।

धन होने पर क्या करना चाहिए ?

दातव्यं भोक्तव्यं, सति विभवे सञ्चयो न कर्तव्यः ।
पश्यामि मधुकरीणां, सञ्चितमर्थं[1] हरन्त्यन्ये[2] ॥२०९॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

विभवे धन के **सति** होने पर **दातव्यं** दान देना चाहिये (तथा) **भोक्तव्यं** भोग-विलास करना चाहिये । **सञ्चयः** सञ्चय **न कर्तव्यः** नहीं करना चाहिये । **पश्यामि** मैं देखता हूँ कि **मधुकरीणां** मधुमक्खियों के **संचितं** संचित **अर्थं** धन को, (मधु को) **अन्ये** और लोग **हरन्ति** हर ले जाते हैं ।

सन्धि—१–सञ्चितम्+अर्थम् । २-हरन्ति + अन्ये ।

सभा में विजयी होने के उपाय ?

न भेतव्यं न बोद्धव्यं, न श्राव्यं वादिनो वचः ।
झटिति प्रतिवक्तव्यं, सभासु विजिगीषुभिः ॥२१०॥

—कलिविडम्बनम् ,

विजिगीषुभिः विजय चाहने वालों को **सभासु** सभाओं में **न भेतव्यं** न डरना चाहिये, **न बोद्धव्यं** न समझना चाहिये, **न वादिनः** न वादी का **वचः** वचन **श्राव्यं** सुनना चाहिये । (केवल) **झटिति** झटपट **प्रतिवक्तव्यं** जवाब देते रहना चाहिये ।

भाग्य एक जगह नहीं रहता

गन्तव्यं नगरशतं, विज्ञानशतानि शिक्षितव्यानि ।
नरपतिशतं च सेव्यं, स्थानान्तरितानि भाग्यानि ॥२११॥

—कथारत्नाकर

नगरशतं सैकड़ों नगरों में **गन्तव्यं** जाना चाहिये, **विज्ञानशतानि** सैकड़ों ज्ञान-विज्ञान **शिक्षितव्यानि** सीखने चाहिये **च** तथा **नरपतिशतं** सैकड़ों राजाओं की **सेव्यं** सेवा करनी चाहिये (क्योंकि) **भाग्यानि** मनुष्यों के भाग्य **स्थानान्तरितानि** भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं—एक जगह नहीं रहते ।

ममता का परित्याग

त्यक्तव्यो ममकारः, त्यक्तुं यदि शक्यते नाऽसौ[1] ।
कर्तव्यो ममकारः, किन्तु स सर्वत्र कर्तव्यः ॥२१२॥

—वैराग्यशतकम्

ममकारः ममता (यह मेरा है—यह भाव) **त्यक्तव्यः** छोड़ देनी चाहिये (परन्तु) **यदि** यदि **असौ** वह **त्यक्तुं** छोड़ी **न शक्यते** न जा सके तो

सन्धि—१–न + असौ ।

ममकार: ममता **कर्तव्य:** रखनी चाहिये **किन्तु** किन्तु **स** वह **सर्वत्र** सब जगह सबके साथ **कर्तव्य:** करनी चाहिये।

क्या करना चाहिए ?

कस्यचित् किमपि नो हरणीयम्, मर्मवाक्यमपि[1] नोच्चरणीयम्[2]।
श्रीपतेः पदयुगं स्मरणीयम्, लीलया भवजलं तरणीयम् ॥२१३॥
—सुभाषितरत्नभण्डागारः

कस्यचित् किसीकी **किमपि** कोई वस्तु **नो हरणीयं** नहीं चुरानी चाहिए। **मर्मवाक्यं** मर्मवेधी वचन **अपि** भी **न उच्चरणीयं** नहीं बोलना चाहिए। **श्रीपतेः** भगवान् विष्णु के **पदयुगं** युगल चरणों का **स्मरणीयं** स्मरण करना चाहिए (और इस प्रकार) **लीलया** सुगमता से ही **भवजलं** संसार-सागर **तरणीयं** पार कर जाना चाहिए।

जैसे को तैसा

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः, तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वारणीयः, साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥२१४॥
—विदुरनीति ३७. ७

यः जो **मनुष्यः** मनुष्य **यस्मिन्** जिसके साथ **यथा** जैसा **वर्तते** व्यवहार रखता है **तस्मिन्** उसके साथ **तथा** वैसा (ही) **वर्तितव्यं** व्यवहार रखना चाहिये। **स** वह **धर्मः** धर्म है। (इसलिये) **मायाचारः** कपटपूर्ण व्यवहार रखनेवाला व्यक्ति **मायया** कपटपूर्ण व्यवहार से ही **वारणीयः** रोका जाना चाहिये (और) **साध्वाचारः** सज्जनता पूर्ण व्यवहार रखने वाला व्यक्ति **साधुना** सज्जनतापूर्ण व्यवहार से ही **प्रत्युपेयः** व्यवहृत होना चाहिये।

सन्धि—१–मर्मवाक्यम्+अपि। २–न+उच्चरणीयम्।

यत्, ण्यत्,

चार उत्तम कर्तव्य

गेयं गीता-नाम सहस्रं, ध्येयं श्रीपतिरूप-मजस्रम्[1] ।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं, देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥२१५॥

गीता-नामसहस्रं गीता और विष्णु सहस्र नाम गेयं गाना चाहिये। श्रीपतिरूपम् भगवान के रूप का अजस्रम् निरन्तर ध्येयं ध्यान करना चाहिये। सज्जनसङ्गे सज्जनों के संग में चित्तं चित्त नेयं ले जाना चाहिये च और दीनजनाय दीन जन के लिये वित्तं धन देयम् देना चाहिये।

भगवान की बातें भगवान् ही जानता है

वसु प्रदेयं खलतोऽवधेयं[2], मनो निधेयं चरणे हरस्य।
निजं विधेयं कृतिभिर्विधेयं[3], विधेर्विधेयं[4] विधिरेव[5] वेत्ति ॥२१६॥

—रसतरंगिणी ५. ३४

वसु धन प्रदेयं देना चाहिये, खलतः दुर्जनों से अवधेयं सावधान रहना चाहिये, मनः मन हरस्य शंकर के चरणे चरणों में निधेयं लगाना चाहिये, (तथा) कृतिभिः विद्वानों को निजं अपना विधेयं काम विधेयं करते रहना चाहिये (क्योंकि) विधेः विधि के विधेयं विधान को विधिः एव विधि ही वेत्ति जानता है।

सनातन धर्म क्या है?

अकृत्यं नैव कर्तव्यं, प्राणत्यागेऽपि[6] संस्थिते।
न च कृत्यं परित्याज्यम्, एष धर्मः सनातनः ॥२१७॥

—पञ्चतन्त्रम् ४. ४२

सन्धि—१—श्रीपतिरूपम् + अजस्रम्। २—खलतः + अवधेयम्। ३—कृतिभिः + विधेयम्। ४—विधेः + विधेयम्। ५—विधिः + एव। ६—प्राणत्यागे + अपि।

प्राणत्यागे प्राण त्याग के **अपि** भी **संस्थिते** उपस्थित होने पर **अकृत्यं** बुरा काम **नैव** कभी नहीं **कर्तव्यं** करना चाहिए **च** और **न कृत्यं** न अच्छा काम **परित्याज्यं** छोड़ना चाहिये **एष** यह **सनातनः** सनातन **धर्मः** धर्म है।

भगवान की प्राप्ति के उपाय

हरिः सेव्यो हरिर्ज्ञेयो[1], हरिर्ध्येयो[2] निरन्तरम्।
हरिः श्राव्यो हरिर्गेयो,[3] हरिमेवाप्नुयात्तदा[4] ॥२१८॥

—सिद्धान्तसङ्क्षेपनिरूपणम् ६

हरिः सेव्यः हरि की सेवा करनी चाहिये, **हरिः ज्ञेयः** हरि को जानना चाहिये, **निरन्तरं** सर्वदा **हरिः ध्येयः** हरि का ध्यान करना चाहिये, **हरिः श्रव्यः** हरि का श्रवण करना चाहिये, **हरिः गेयः** हरि का गान करना चाहिये, **तदा** तब (मनुष्य) **हरिम् एव** हरिको ही **आप्नुयात्** पा जाता है।

विरक्त पुरुष के कर्तव्य

हेयं हर्म्यमिदं[5] निकुञ्जभवनं, श्रेयं प्रदेयं धनं।
पेयं तीर्थपयो हरेर्भगवतो[6], गेयं पदाम्भोरुहम्[7] ॥
नेयं जन्म चिराय दर्भशयने, धर्मे निधेयं मनः।
स्थेयं तत्र सितासितस्य[8] सविधे, ध्येयं पुराणं महः ॥२१९॥

—रसतरंगिणी ६. २९

इदं यह **हर्म्यं** घर **हेयम्** छोड़ देना चाहिये, **निकुञ्जभवनं** निकुञ्ज रूपी भवन का **श्रेयं** आश्रय लेना चाहिये, **धनं** धन **प्रदेयं** दे देना चाहिये, **तीर्थपयः** तीर्थ का पानी **पेयं** पीना चाहिये, **भगवतः** भगवान् **हरेः** हरि के **पदाऽम्भोरुहं** चरणकमल का **गेयं** गान करना चाहिये, **दर्भशयने** कुश की शय्या पर **चिराय** चिर काल के लिये **जन्म** जन्म **नेयं** बिताना चाहिये, **धर्मे** धर्म में **मनः** मन **निधेयं** लगाना चाहिये, **सितासितस्य** गंगा और यमुना के **सविधे** समीप **स्थेयं**

सन्धि—१–हरि + ज्ञेयः। २–हरिः + ध्येयः। ३–हरिः+गेयः। ४–हरिम् + एव + आप्नुयात् + तदा। ५–हर्म्यम् + इदम्। ६–हरेः + भगवतः। ७—पद + अम्भोरुहम्। ८–सित + असितस्य।

रहना चाहिये, (और) तत्र वहाँ पर पुराणं सनातन महः तेज (परमेश्वर) का ध्येयं ध्यान करना चाहिये।

विद्या की श्रेष्ठता

न चोरहार्यं न च राजहार्यं, न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत[1] एव नित्यं, विद्या-धनं सर्व-धन-प्रधानम् ॥२२०॥

—नीतिशतकम्

विद्याधनं विद्यारूपी धन न न चोरहार्यं चोरों से चुराने लायक है, न न राजहार्यं राजा द्वारा हरण करने लायक है। न न भ्रातृभाज्यं भाइयों द्वारा बाँटने लायक है न न भारकारि भारी ही लगने लायक है च तथा व्यये खर्च कृते करने पर नित्यं सदा वर्धते एव बढ़ता ही है (इसलिये यह) विद्याधनं विद्यारूपी धन सर्वधन-प्रधानं सब धनों में प्रधान है, श्रेष्ठ है।

क्त प्रत्यय

निरर्थक ही जीवन बीत गया

अधीता न कला काचित्, न च किञ्चित् कृतं तपः।
दत्तं न किञ्चित् पात्रेभ्यो, गतं च मधुरं वयः ॥२२१॥

प्रबन्धकोशः २४—४२

न न काचित् कोई कला कला अधीता सीखी, न न किञ्चित् कोई तपः तप कृतं किया, न न पात्रेभ्यः दान देने के योग्य पुरुषों को किञ्चित् कुछ दत्तं दान ही दिया च और मधुरं मनोहर वयः अवस्था (भी) गतं बीत गई।

अपनी ही दुर्दशा

भोगा न भुक्ता वयमेव[2] भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव[3] तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव[4] याताः, तृष्णा न जीर्णा वयमेव[5] जीर्णाः ॥२२२॥

—नीतिशतकम् १५५

भोगाः भोग न भुक्ताः नहीं भोगे गये (प्रत्युत) वयम् एव हमी लोग भुक्ताः भोगे गये। तपः तप न तप्तं नहीं तपा गया (प्रत्युत) वयम् एव

सन्धि—१-वर्धते + एव। २, ३, ४, ५-वयम् + एव।

हम लोग ही तप्ताः तपे गये। कालः समय न याताः नहीं बीता (प्रत्युत) वयम् एव हम लोग ही याताः बीत गये। तृष्णा लालच न जीर्णा पुरानी नहीं हुई (प्रत्युत) वयम् एव हम लोग ही जीर्णाः पुराने हो गये।

आशा की अजेयता

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशन-विहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशा[1] पिण्डम् ॥२२३॥

—चर्पटपञ्जरिका

अङ्गं अङ्ग गलितं गल गया, मुण्डं शिर पलितं सफेद हो गया, तुण्डं मुँह दशन-विहीनं दाँतों से विहीन जातं हो गया, वृद्ध बूढ़ा आदमी दण्डं दंडा गृहीत्वा लेकर याति जाता है तदपि तथापि आशा आशा पिण्डं शरीर को न मुञ्चति नहीं छोड़ती है।

वे माता-पिता शत्रु हैं

माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये, हंसमध्ये बको यथा ॥२२४॥

—चाणक्यशतकम् ६

(वह) माता माता शत्रुः शत्रु है (और) (वह) पिता पिता वैरी वैरी है येन जिसके द्वारा बालः बालक न पाठितः नहीं पढ़ाया गया अर्थात् जिन्होंने बालक को पढ़ाया नहीं। (क्योंकि न पढ़ाने के कारण वह बालक उसी प्रकार) सभामध्ये सभा के बीच में न शोभते नहीं शोभित होता है यथा जिस प्रकार हंसमध्ये हंसों के मध्य में बकः बगुला (शोभित नहीं होता है।)

प्राणियों का स्वभाव

पीतं भुक्तं विलसितं, दत्तं दापित-मादृतम्[2]।
नर्तितं गीत-मुषितम्[3], अनन्तैः प्राणिदेहकैः ॥२२५॥

—योगवाशिष्ठ उत्पत्ति. ७३, ८०

सन्धि— १—मुञ्चति + आशा। २—दापितम् + आदृतम्। ३—गीतम् + उषितम्।

अनन्तैः अनन्त **प्राणिदेहकैः** प्राणधारी जीवों द्वारा **पीतं** पीया गया, **भुक्तं** खाया गया, भोग किया गया, **विलसितं** विलास किया गया, **दत्तं** दिया गया, **दापितम्** दिलाया गया, **आदृतम्** आदर किया गया, **नर्तितं** नाचा गया, **गीतं** गाया गया (तथा) **उषितम्** निवास किया गया।

शील की महत्ता

जिता सभा वस्त्रवता, मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता, सर्वं शीलवता जितम् ॥२२६॥
—उद्योगपर्व ३४, ४७,

वस्त्रवता सुन्दर वस्त्र वाले पुरुष के द्वारा **सभा** सभा **जिता** जीत ली जाती है, **गोमता** गाय रखने वाले पुरुष के द्वारा **मिष्टाशा** मधुर वस्तु खाने की चाह **जिता** जीत ली जाती है, **यानवता** सवारी रखने वाले पुरुष के द्वारा **अध्वा** रास्ता **जितः** जीत लिया जाता है (पर) **शीलवता** शीलवान् पुरुष के द्वारा **सर्वं** सब कुछ **जितं** जीत लिया जाता है।

दीनबंधु भगवान् से प्रार्थना

येनोद्धृता[1] वसुमती सलिले निमग्ना,
नग्ना च पाण्डववधूः स्थगिता दुकूलैः।
सम्मोचितो जलचरस्य मुखाद् गजेन्द्रो,
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य[2] स दीनबन्धुः ॥२२७॥
—दीनबन्ध्वष्टकम् ३

येन जिसके द्वारा **सलिले** पानी में **निमग्ना** डूबी हुई **वसुमती** पृथ्वी **उद्धृता** निकाली गई, **नग्ना** नग्न **पाण्डववधूः** पाण्डवों की स्त्री (द्रौपदी) **दुकूलैः** चादरों से **स्थगिता** ढँक दी गई (तथा) **जलचरस्य** जलचर (ग्राह) के **मुखात्** मुख से **गजेन्द्रः** गजराज **सम्मोचितः** छुड़ाया गया **स** वह **दीनबन्धुः**

सन्धि—१—येन + उद्धृता २—मे + अद्य।

दीनों का सहायक भगवान् अद्य आज मे मेरी दृग्गोचरः आखों का विषय भवतु होवे, मुझे दर्शन देवे।

सीता द्वारा श्रीराम का कुशल प्रश्न

रामस्य शयितं भुक्तं, जल्पितं हसितं स्थितम्।
प्रक्रान्तं च मुहुः पृष्ट्वा, हनूमन्तं व्यसर्जयत्॥२२८॥*

—भट्टिकाव्यम् ८. १२५

(सीता ने) रामस्य राम का शयितं सोना, भुक्तं खाना, जल्पितं बोलना, हसितं हसना, स्थितं रहना च तथा प्रक्रांतं घूमना-फिरना आदि मुहुः बार बार पृष्ट्वा पूछ कर हनूमन्तं हनूमान को व्यसर्जयत् विसर्जित किया, विदा किया।

उस महापुरुष ने क्या नहीं जीत लिया ?

धने येन जितो गर्वो, यौवने मन्मथो जितः।
तेन मानुष-सिंहेन, जितं किं न महीतले॥२२९॥

—पुरुषपरीक्षा ३०.५

धने धन के होने पर येन जिसके द्वारा गर्वः अभिमान जितः जीत लिया गया, (तथा) यौवने जवानी में मन्मथः काम जितः जीत लिया गया, तेन उस मानुषसिंहेन वीर पुरुष के द्वारा महीतले दुनियाँ में किं क्या न जितम् नहीं जीत लिया गया ?

क्तवतु प्रत्यय

किसने अपने जन्म को धन्य बनाया ?

यो हृतवान् पर-दुःखं, न्याय्यं कृतवान्, उपेक्षितान् भृतवान्।
अनुसृतवान् शुभमार्गं, धन्यं निज-जन्म स कृतवान्॥२३०॥

—सम्पादक

यः जिसने परदुःखं दूसरे के दुःख को हृतवान् हर लिया, न्याय्यं न्यायोचित

* इस श्लोक के शयित आदि पदों में भाव में क्त प्रत्यय हुआ है।

काम कृतवान् किया, उपेक्षितान् उपेक्षित, अनाथ लोगों का भृतवान् भरण-पोषण किया (तथा) शुभमार्गं शुभमार्ग का अनुसृतवान् अनुसरण किया स उसने निज-जन्म अपने जन्म को धन्यं धन्य कृतवान् किया।

किसने शिक्षित समाज को दूषित किया ?

य: शास्त्राणि पठितवान्, स्वयं लिखितवान् बहून् तथा ग्रन्थान्।
न च रक्षितवान् वृत्तं, विबुध-समाजं स दूषितवान् ॥२३१॥
—सम्पादक

य: जिसने शास्त्राणि शास्त्रों को पठितवान् पढ़ा, तथा तथा स्वयं स्वयं बहुन् बहुत ग्रन्थान् ग्रन्थों को लिखितवान् लिखा (परन्तु) वृत्तं चरित्र को न रक्षितवान् नहीं बचाया (तो) स उसने विबुध-समाजं विद्वानों के समाज को दूषितवान् दूषित किया, कलङ्कित किया।

किसने मनुष्य समाज को भूषित किया ?

नो दृष्टवान् पर-स्त्रीं, नो पर-हृदयं कदापि पीडितवान्।
नो स्पृष्टवान् पर-स्वं, मनुज-समाजं स भूषितवान् ॥२३२॥
—सम्पादक

(जिसने) परस्त्रीं दूसरे की स्त्री को नो दृष्टवान् नहीं देखा, कदापि कभी भी पर-हृदयं दूसरे के हृदय को न पीड़ितवान् नहीं दुखाया, तथा परस्वं दूसरे के धन को न स्पृष्टवान् नहीं छूआ स उसने मनुज-समाजं मानव समाज को भूषितवान् भूषित किया।

यदि यश नहीं कमाया तो क्या किया ?

भुक्तवान् पीतवान् कामं, सानन्दं नीतवान् वयः।
लब्धवान् नो यशः शुभ्रं, तदा किं कृतवान् नरः ॥२३३॥
—सम्पादक

कामं खूब भुक्तवान् खाया (और) पीतवान् पीया (तथा) सानन्दं

आनन्द के साथ वयः अवस्था नीतवान् बिताया (परन्तु यदि) शुभ्रं सफेद यशः यश न लब्धवान् नहीं पाया, नहीं कमाया तदा तो नरः मनुष्य ने किं क्या कृतवान् किया ?

शतृ प्रत्यय

विद्यार्थी विद्वान् कैसे होता है ?

पठन् रटन् लिखन् पृच्छन्, अभ्यस्यन् चिन्तयन् मुहुः ।
अविस्मरन् निजं पाठं, छात्रो भवति पण्डितः ॥२३४॥

—सम्पादक

पठन् पढता हुआ, रटन् रटता हुआ, लिखन् लिखता हुआ, पृच्छन् पूछता हुआ, अभ्यस्यन् अभ्यास करता हुआ, मुहुः बार बार चिन्तयन् चिन्तन करता हुआ तथा निजं अपने पाठं पाठ को अविस्मरन् न भूलता हुआ, छात्रः विद्यार्थी पण्डितः विद्वान् भवति होता है ।

सदा भगवान् का ही चिन्तन करो

उत्तिष्ठंश्चिन्तय[1] हरिं, व्रजंश्चिन्तय[2] केशवम् ।
भुञ्जंश्चिन्तय[3] गोविन्दं, स्वपंश्चिन्तय[4] माधवम् ॥२३५॥

—पाञ्चरात्ररक्षा ३

उत्तिष्ठन् उठते हुए हरिं हरि का चिन्तय चिन्तन करो, व्रजन् चलते हुए केशवं केशव का चिन्तय चिन्तन करो, भुञ्जन् भोजन करते हुए गोविन्दं गोविन्द का चिन्तय चिन्तन करो (तथा) स्वपन् सोते हुए माधवम् माधव का चिन्तय चिन्तन करो ।

सन्धि—१–उत्तिष्ठन् + चिन्तय । २–व्रजन् + चिन्तय । ३–भुञ्जन् + चिन्तय
४–स्वपन् + चिन्तय ।

तत्त्वज्ञानी का मन्तव्य

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्, अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्।
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्, उन्मिषन् निमिषन् अपि ॥२३६॥
गीता ५. ८-९

पश्यन् देखता हुआ, **शृण्वन्** सुनता हुआ, **स्पृशन्** छूता हुआ, **जिघ्रन्** सूँघता हुआ, **अश्नन्** खाता हुआ, **गच्छन्** जाता हुआ, **स्वपन्** सोता हुआ, **श्वसन्** साँस लेता हुआ, **प्रलपन्** बोलता हुआ, **विसृजन्** छोड़ता हुआ, **गृह्णन्** लेता हुआ, **उन्मिषन्** आँख खोलता हुआ (तथा) **निमिषन्** आँख बन्द करता हुआ, **अपि** भी (तत्त्वज्ञानी पुरुष "मैं कुछ नहीं करता हूँ" ऐसा माने)।

दुर्जन का स्वभाव

स्पृशन्नपि[1] गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि[2] भुजंगमः।
हसन्नपि[3] नृपो हन्ति, मानयन्नपि[4] दुर्जनः ॥२३७॥
—हितोपदेशः ४, १५

गजः हाथी **स्पृशन्** स्पर्श करता हुआ **अपि** भी **हन्ति** मारता है, **भुजंगमः** साँप **जिघ्रन्** सूँघता हुआ **अपि** भी (मारता है), **नृपः** राजा **हसन्** हँसता हुआ **अपि** भी **हन्ति** मारता है (तथा) **दुर्जनः** दुर्जन आदमी **मानयन्** सम्मान करता हुआ **अपि** भी मारता है।

चन्द्रमा की किरणें

नाशयन्तो घनध्वान्तं, तापयन्तो वियोगिनः।
पतन्ति शशिनो भासः, भासयन्तः क्षमातलम् ॥२३८॥

घनध्वान्तं गाढे अन्धकार को **नाशयन्तः** नष्ट करते हुए, **वियोगिनः** वियोगियों को **तापयन्तः** कष्ट देते हुए (तथा) **क्षमातलम्** पृथ्वी को **भासयन्तः**,

---

सन्धि—१–स्पृशन् + अपि। २–जिघ्रन् + अपि। ३–हसन् + अपि। ४–मानयन् + अपि।

उद्भासित करते हुए शशिनः चन्द्रमा के भासः किरण पतन्ति गिर रहे हैं चारों ओर छिटक रहे हैं।

दण्ड की महिमा

भिन्दन् छिन्दन् रुजन् कृन्तन्, दारयन् पाटयन् तथा।
घातयन् अभिधावँश्च[1], दण्ड एव चरत्युत[2] ॥२३६॥

शान्तिपर्व १२१. १६

दण्ड एव दण्ड ही भिन्दन् भेदन करता हुआ, छिन्दन् छेदन करता हुआ, रुजन् तोड़ता-फोड़ता हुआ, कृन्तन् काटता हुआ, दारयन् चीरता हुआ, पाटयन् फाड़ता हुआ, घातयन् मारता हुआ च तथा अभिधावन् दौड़ता हुआ चरति विचरण करता है।

पढ़ते रहने वाला मूर्ख नहीं होता

पठतो नास्ति[1] मूर्खत्वं, जपतो नास्ति[2] पातकम्।
मौनिनः कलहो नास्ति[3], न भयं चास्ति[4] जाग्रतः ॥२४०॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

पठतः पढ़ने वाले को मूर्खत्वं मूर्खता नास्ति नहीं रहती, जपतः जप करने वाले को पातकं पातक नास्ति नहीं रहता, मौनिनः मौन रहने वाले को कलहः (किसी से) झगड़ा नास्ति नहीं होता च तथा जाग्रतः जागने वाले को भयं भय नास्ति नहीं रहता।

उसी का गोत्र, जन्म एवं जीवन सफल है

देवं पूजयतो, दयां विदधतः, सत्यं वचो जल्पतः,
सद्भिः सङ्गमनुज्झतो[5], वितरतो दानं, मदं मुञ्चतः।
यस्येत्थं[6] पुरुषस्य यान्ति दिवसाः तस्यैव[7] मन्यामहे,
गोत्रं जन्म च जीवितं च सफलं श्लाघ्या कथा चाग्रिमा[8] ॥२४१।

उपदेशतरङ्गिणी ३, ४६, २

सन्धि—१. २. ३–न + अस्ति ४–च + अस्ति। ५—सङ्गम् + अनुज्झतः। ६—यस्य + इत्थम्। ७—तस्य + एव। ८—च + अग्रिमा।

देवं ईश्वर को पूजयतः पूजते हुए, दयां दया विदधतः करते हुए, सत्यं सत्य वचः वचन जल्पतः बोलते हुए, सद्भिः सज्जनों से सङ्गम् साथ को अनुज्झतः न छोड़ते हुए, दानं दान वितरतः देते हुए, मदं अभिमान को मुञ्चतः छोड़ते हुए यस्य जिस पुरुषस्य पुरुष के दिवसाः दिन इत्थं इस प्रकार (उपर्युक्त कार्यों में) यान्ति बीतते हैं तस्य एव उसीके गोत्रं गोत्र को, जन्म जन्म को, च तथा जीवितं जीवन को (हम) सफलं सफल मन्यामहे मानते हैं च और (उसी की) कथा कथा श्लाघ्या प्रशंसनीय (एवं) अग्रिमा आगे रखने योग्य (होती है) ।

शानच् प्रत्यय

कौन मनुष्य बहुज्ञ होता है ?

अधीयानो बहून ग्रन्थान्, सेवमानो बहून् गुरून् ।
रममाणो बहून् देशान्, बहुज्ञो जायते नरः ॥२४२॥

—सम्पादक

बहून् बहुत ग्रन्थान् ग्रन्थों को अधीयानः पढ़ता हुआ, बहून् अनेक गुरून् गुरुओं की सेवमानः सेवा करता हुआ तथा बहून् बहुत देशान् देशों को रममाणः घूमता हुआ नरः मनुष्य बहुज्ञः बहुत विषयों का जानकार जायते होता है ।

किसका उत्कर्ष बढ़ता है ?

कुर्वाणः कृतिममितां मितं शयानः,
भुञ्जानो मितममितं परं ददानः ।
जानानो बहुविषयान् मितं ब्रुवाणः
उत्कर्षं भुवि लभते स वर्द्धमानः ॥२४३॥

—सम्पादक

(जो) अमितां अपरिमित कृतिं काम कुर्वाणः करता हुआ (पर) मितं थोड़ा शयानः सोता हुआ, मितं परिमित भुञ्जानः खाता हुआ परं

परन्तु **अमितं** अपरिमित **ददानः** देता हुआ, **बहुविषयान्** बहुत विषयों को **जानानः** जानता हुआ (पर) **मितं** परिमित **ब्रुवाणः** बोलता हुआ (होता है) **स** वह **भुवि** संसार में **वर्द्धमानः** बढ़ता हुआ **उत्कर्षं** उत्कर्ष को **लभते** प्राप्त करता है ।

मनुष्य की बुद्धि कैसे बढ़ती है ?

अधीयमाना सद्विद्या, सेव्यमानश्च सद्गुरुः ।
पठ्यमानाश्च सद्ग्रन्था, वर्धयन्ति धियं नृणाम् ।।२४४।।

—सम्पादक

अधीयमाना पढ़ी जाती हुई **सद्विद्या** उत्तम विद्या, **सेव्यमानः** सेवा किया जाता हुआ **सद्गुरुः** उत्तम गुरु **च** तथा **पठ्यमानाः** पढ़े जाते हुए **सद्ग्रन्थाः** उत्तम ग्रन्थ **नृणाम्** मनुष्यों की **धियं** बुद्धि को **वर्धयन्ति** बढ़ाते हैं ।

कैसा धन सार्थक होता है ?

दीयमानं दरिद्रेभ्यो, भुज्यमानं कुटुम्बिभिः ।
नीयमानं तथा मित्रैः, सार्थकं जायते धनम् ।।२४५।।

—सम्पादक

दरिद्रेभ्यः दरिद्रों के लिए **दीयमानं** दिया जाता हुआ, **कुटुम्बिभिः** कुटुम्बियों द्वारा **भुज्यमानं** खाया जाता हुआ **तथा** और **मित्रैः** मित्रों द्वारा **नीयमानं** ले जाया जाता हुआ **धनं** धन **सार्थकं** सार्थक **भवति** होता है ।

कौन मनुष्यों को गिराता है ?

ह्रियमाणं परधनं, इष्यमाणाः परस्त्रियः ।
पीड्यमाना अनाथाश्च, पातयन्ति नरानधः ।।२४६।।

—सम्पादक

ह्रियमाणं चुराया जाता हुआ **परधनं** दूसरे का धन, **इष्यमाणाः** चाही जाती हुई **परस्त्रियः** दूसरों की स्त्रियाँ, **च** तथा **पीड्यमानाः** सताये जाते हुए **अनाथाः** अनाथ, **नरान्** मनुष्यों को **अधः** नीचे **पातयन्ति** गिरा देते हैं ।

क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्यय

जितेन्द्रिय पुरुष का लक्षण ?

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च, भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥२४७॥
—मनुस्मृति २. ६८.

यः जो नरः मनुष्य श्रुत्वा सुनकर, स्पृष्ट्वा छूकर च और दृष्ट्वा देखकर च और भुक्त्वा खाकर च और घ्रात्वा सूंघ कर न हृष्यति न प्रसन्न होता है वा अथवा न ग्लायति न दुखी होता है स उसको जितेन्द्रियः जितेन्द्रिय विज्ञेयः जानना चाहिये ।

किसके काम में विघ्न नहीं पड़ते ?

यः पृष्ट्वा कुरुते कार्यं, प्रष्टव्यान् स्वहितान् गुरून् ।
न तस्य जायते विघ्नः, कस्मिंश्चिदपि[1] कर्मणि ॥२४८॥
—विदुरनीति

यः जो व्यक्ति प्रष्टव्यान् सम्मति लेने योग्य स्वहितान् अपने हितचिन्तक गुरून् गुरुजनों से पृष्ट्वा पूछकर कार्यं काम कुरुते करता है तस्य उसके कस्मिंश्चिद् अपि किसी भी कर्मणि काम में विघ्नः विघ्न न जायते नहीं होता है ।

सब कुछ पढ़ने का निष्कर्ष

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं[2] सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥२४९॥
—पाञ्चरात्ररक्षा २,

सर्वशास्त्राणि सब शास्त्रों का आलोड्य आलोड़न कर च तथा (उन्हें) पुनः पुनः बार-बार विचार्य विचार कर एकं एक इदं यह (बात) सुनिष्पन्नं

सन्धि—१–कस्मिंश्चित् + अपि । २–इदम् + एकम् ।

सिद्ध हुई (कि) नारायणः भगवान् सदा सदा ध्येयः ध्यान करने योग्य हैं अर्थात् भगवान् का ही सदा ध्यान करना चाहिये।

शान्त मनुष्य की परिभाषा

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा स्नात्वा शुभाऽशुभम्।
न हृष्यति ग्लायति यः स शान्त इति कथ्यते ॥२५०॥

—योगवाशिष्ठ मुमु० १३.७२

यः जो मनुष्य श्रुत्वा सुनकर, स्पृष्ट्वा स्पर्शकर, दृष्ट्वा देखकर, भुक्त्वा भोजन कर, स्नात्वा स्नान कर न हृष्यति न प्रसन्न होता है न ग्लायति न दुःखी होता है स वह शान्तः इति शान्त ऐसा कथ्यते कहा जाता है।

तुमुन् प्रत्यय

ऐसा निर्लज्ज पुरुष कैसे जीता है ?

नो वक्तुं न विलोकितुं न हसितुं, न क्रीडितुं नेरितुम्[1]।
न स्थातुं न परीक्षितुं न पणितुं, नो वा सुतं नोदितुम्॥
नो दातुं न विचेष्टितुं न पठितुं, नाऽनन्दितुं[2] वैधितुम्[3]।
नो जानाति जनः स जीवति, कथं निर्लज्ज-चूडामणिः॥२५१॥

—सुभाषितशतकत्रयादिसंग्रहः ५.८६

(जो मनुष्य) नो वक्तुं न बोलना, न विलोकितुं न देखना, न हसितुं न हसना, न क्रीडितुं न खेलना, न ईरितुं न प्रेरणा देना, न स्थातुं न खड़ा होना, न परीक्षितुं न परीक्षा करना, न पणितुं न क्रय-विक्रय करना, वा अथवा न न सुतं पुत्र को नोदितुं किसी अच्छे काम के लिये प्रेरित करना, नो दातुं न देना, न विचेष्टितुं न चेष्टा करना, न पठितुं न पढ़ना न आनन्दितुं न आनन्दित होना वा अथवा नो न एधितुं बढ़ना, उन्नति करना जानाति जानता है स वह निर्लज्ज-चूडामणिः निर्लज्ज पुरुषों का शिरोमणि जनः मनुष्य कथं कैसे जीवति जीता है ?

सन्धि—१—न + ईरितुम्। २—न + आनन्दितुम्। ३—वा + एधितुम्।

नीच बिगाड़ना ही जानता है, बनाना नहीं

नाशयितुमेव[1] नीचः, परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम्।
पातयितुमेव[2] शक्तिर्, वायोर्वृक्षं[3] न चोन्नमितुम्[4] ॥२५२॥

(पञ्चतन्त्रम् १, ४०७)

नीचः नीच पुरुष **परकार्यं** दूसरे के काम को **नाशयितुं** बिगाड़ना **एव** ही **वेत्ति** जानता है **प्रसाधयितुं न** बनाना नहीं। **वायोः** वायु की **शक्तिः** शक्ति **वृक्षं** वृक्ष को **पातयितुं** गिराने को **एव** ही होती है **उन्नमितुं** उठाने को **न** नहीं।

यह सज्जनों का स्वभाव है

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं, कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम्[5]।
सज्जनानां स्वभावोऽयं[6] केनेन्दुः[7] शिशिरीकृतः ॥२५३॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

उपकर्तुं उपकार करना, **प्रियं** प्रिय **वक्तुं** बोलना, **अकृत्रिमं** निश्छल **स्नेहं**, प्रेम **कर्तुं** करना, **अयं** यह **सज्जनानां** सज्जनों का **स्वभावः** स्वभाव है। **इन्दुः** चन्द्रमा **केन** किससे **शिशिरीकृतः** शीतल बनाये गये हैं? (अर्थात् चन्द्रमा को किसने शीतल बनाया कि वह सबको आनन्दित करता है?)

सन्धि—१–नाशयितुम् + एव । २–पातयितुम् + एव । ३–वायोः + वृक्षम् । ४—च + उन्नमितुम् । ५—स्नेहम् + अकृत्रिमम् ६—स्वभावः + अयम् । ७—केन + इन्दुः ।

परिशिष्ट प्रकरणम्

णिजन्त

लोकहितैषी पुरुषों का स्वभाव

कारयन्ति शुभं कर्म, चालयन्ति शुभे पथि ।
दापयन्ति धनं पात्रे, नरा लोकहितैषिणः ॥२५४॥

—सम्पादक

लोकहितैषिणः सबका हित चाहने वाले नराः मनुष्य (सबसे) शुभं कर्म अच्छा काम कारयन्ति कराते हैं, (सबको) शुभे पथि अच्छे रास्ते पर चालयन्ति चलाते हैं, (सबसे) पात्रे सत्पात्र को धनं धन दापयन्ति दिलाते हैं ।

दुर्लभ मनुष्य

उत्थापयन्ति पतितान्, निमग्नान् तारयन्ति च ।
बोधयन्ति शयानान् ये, ते नरा भुवि दुर्लभाः ॥२५५॥

—सम्पादक

ये जो पतितान् गिरे हुए लोगों को उत्थापयन्ति उठाते हैं, निमग्नान् डूबे हुए लोगों को तारयन्ति तारते हैं, पार लगा देते हैं (तथा) शयानान् सोते हुए लोगों को बोधयन्ति जगाते हैं ते नराः वे मनुष्य भुवि संसार में दुर्लभाः दुर्लभ हैं ।

माताओं तथा शिक्षकों के कर्तव्य

भोजयन्ति पाययन्ति शाययन्ति शिक्षयन्ति
खेलयन्ति भ्रामयन्ति सर्वदैव मातरः ।
पाठयन्ति लेखयन्ति बोधयन्ति दर्शयन्ति
सत्पथं, विनाशयन्ति दुर्गुणं सुशिक्षकाः ॥२५६॥

—सम्पादक

मातरः मातायें सर्वदैव हमेशा (बालकों को) भोजयन्ति खिलाती हैं, पाययन्ति पिलाती हैं, शाययन्ति सुलाती हैं, शिक्षयन्ति सिखाती हैं, खेलयन्ति खेलाती हैं (तथा) भ्रामयन्ति घुमाती हैं ।

(इसी प्रकार) सुशिक्षकाः अच्छे शिक्षक (छात्रों को) पाठयन्ति

पढ़ाते हैं, लेखयन्ति लिखाते हैं, बोधयन्ति समझाते हैं, सत्पथं अच्छा मार्ग दर्शयन्ति दिखाते हैं (तथा) दुर्गुणं दुर्गुण को विनाशयन्ति नष्ट करते हैं, दूर करते हैं।

सन्नन्त

दुर्जन को वश में करना महा कठिन है

हालाहलं खलु पिपासति कौतुकेन
कालानलं परिचुचुम्बिषति प्रकामम्।
व्यालाधिपं च यतते परिरब्धुमद्धा
यो दुर्जनं वशयितुं कुरुते मनीषाम् ॥२५७॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारः

यः जो मनुष्य दुर्जनं दुर्जन को वशयितुं वश में करने का मनीषां विचार कुरुते करता है (वह) खलु निश्चय ही कौतुकेन कौतुक से हालाहलं विष को पिपासति पीना चाहता है, कालानलं कालाग्नि को प्रकामम् अच्छी तरह परिचुचुम्बिषति चूमना चाहता है च तथा अद्धा ठीक ठीक व्यालाधिपं सर्पराज को परिरब्धुं आलिङ्गन करने का यतते प्रयत्न करता है।

वह विद्यार्थी विद्वान् नहीं होना चाहता

यः पिपठिषति न पाठं, न बुभुत्सति नापि लिलिखिषति।
जिगमिषति सदा सदनं, स बुभूषति नो सुधीश्छात्रः ॥२५८॥

—सम्पादक

यः जो छात्रः विद्यार्थी पाठं पाठ न पिपठिषति नहीं पढ़ना चाहता है, न बुभुत्सति न समझना चाहता है, नापि और न लिलिखिषति लिखना चाहता है और सदा हमेशा सदनं घर जिगमिषति जाना चाहता है स वह सुधीः विद्वान् न बुभूषति नहीं होना चाहता है।

वे निश्चय ही मरना चाहते हैं

ये चिकीर्षन्ति दुष्कार्यं, जिहीर्षन्ति पराङ्गनाम्।
युयुत्सन्ति विना हेतुं, ते मुमूर्षन्ति निश्चयम् ॥२५९॥

—सम्पादक

ये जो लोग दुष्कार्यं दुष्कर्म चिकीर्षन्ति करना चाहते हैं, पराङ्गनाम् दूसरे की स्त्री को जिहीर्षन्ति हरना चाहते हैं (तथा) विना हेतुं बिना मतलब के युयुत्सन्ति युद्ध करना चाहते हैं ते वे निश्चयं निश्चय ही मुमूर्षन्ति मरना चाहते हैं ।

यङन्त

किस विद्यार्थी की कीर्ति बढ़ती है ?

पापठ्यते प्रतिदिनं यदि दत्तचित्तो,
बोबुध्यते च सकलं कथितं गुरूणाम् ।
लेलिख्यते प्रतिदिनं नियमेन सम्यक् ,
जाज्वल्यते गुणिषु तस्य सदैव कीर्तिः ॥२६०॥

—सम्पादक

यदि अगर (विद्यार्थी) प्रतिदिनं प्रतिदिन दत्तचित्तः दत्तचित्त होकर पापठ्यते खूब पढ़ता है, च तथा गुरूणां गुरुओं के सकलं समस्त कथितं कथन को बोबुध्यते अच्छी तरह समझता है, प्रतिदिनं प्रतिदिन नियमेन नियमपूर्वक सम्यक् अच्छी तरह से लेलिख्यते खूब लिखता है, तस्य उस विद्यार्थी की कीर्त्तिः कीर्ति गुणिषु गुणियों में सदैव हमेशा ही जाज्वल्यते खूब चमकती है ।

यङ्लुगन्त

मद्य पीने वाले व्यक्ति के ये दुष्कर्म

तोतुदीति भविनः सुरारतो, वावदीति वचनं विनिन्दितम् ।
मोमुषीति परवित्तमस्तधीः, बोभुजीति परकीय-कामिनीम् ॥२६१॥

—अमितगतिश्रावकाचारः ५. ६

सुरारतः मद्य पीने में संलग्न मनुष्य भविनः मनुष्यों को तोतुदीति कष्ट पहुँचाता है, विनिन्दितं निन्दनीय वचनं वचन वावदीति बोलता है, परवित्तम् दूसरे का धन मोमुषीति चुराता है तथा अस्तधीः बुद्धिभ्रष्ट होकर परकीय-कामिनीम् दूसरे की स्त्री का बोभुजीति भोग करता है ।